कपूर प्रवाहिनी की कुंजी

गंगा दत्त शास्त्री विनोद

कपूर ब्रादर्स श्रीनगर

कपूर हिन्दी गाइड

POETRY PART

Bushan

Shri Bharat Bushan Jolli

Shri Bharat Bushan X

प्रवाहिनी

1.12

Bharat Bhushan

[illegible]

Student

॥ श्री सरस्वत्यै नमः ॥

जय भारत

[श्रीधर पाठक]

संकेत (Reference)—यह कविता श्रीधर पाठक द्वारा रचित "भारत त" से ली गई है। इस कविता में भारतवर्ष की अनुपम महिमा का वर्णन या गया है। कवि ने इसे सब गुणों का भण्डार और सुन्दरता का आगार। खलाते हुए यहाँ की सब जातियों की भारतीय होने के नाते वन्दना की है

भाव (Substance)—हे महिमाशाली तथा गुणवान् भारत, तुम्हारी हो। तुम सुन्दर आकाश युक्त, सफेद धूल से लथपथ, गंगाधारी, पवित्र, र अंगों वाले, सोने-चाँदी के पहाड़ों वाले, तप से शोभित और शोभा- ली हो।

संसार को पवित्र करने वाले, सुहाने, सुख तथा शान्ति के घर हो। मार्ग- क, सुमति, सर्व-श्रेष्ट, एवं विश्व-विहारी हो। तुम्हारी उत्तम वस्तुओं—गंगा, उपवन, जल, थल आदि सब की जय हो। इसी प्रकार तुम्हारे में रहने हिन्दू, मुस्लिम आदि जातियों की भी जय हो।

(१)

जय भारत जय, जय भारत जय,
जय महिमा मय, जय गुण धारी।

अर्थ—हे भारत, तुम्हारी जय हो। हे महानता के स्वरूप तथा गुणों के करने वाले तुम्हारी जय हो।

(२)

दिव्य दिगम्बर, सित-रज-धूसर,
गंगाधर, शुचि अंग मनोहर,
कनक-रजत-गिरि-शीश-छटा छवि,
तप मण्डित द्युति-पुँज प्रसारी ।

अर्थ—हे भारत तुम सुन्दर दिशाओं और सुन्दर आकाश से युक्त हो। तुम्हारा शरीर सफेद धूलि से लथपथ हो रहा है । तुम्हारे आँचल में गंगा बहती है, तुम्हारा अंग-अंग पवित्र और मनोहर है । इसी प्रकार सोने-चाँदी जैसे पहाड़ों से तुम्हारे मस्तक की शोभा निखर रही है । तुम तप से शोभित होकर प्रकाश के पुँज को सर्वत्र फैला रहे हो ।

(३)

जय जय पावन, जग भावन,
सुख-मन्दिर जय शान्त सुहावन;
सुपथ-प्रभाकर, सुमति-सुधाकर,
जय वसुधा-वर विश्व-विहारी ।

अर्थ—हे संसार को पवित्र करने वाले, जग के लिये शोभन, सुख के घर, शान्त और सुहाने सन्मार्ग को दर्शाने में सूर्य की भाँति प्रकाश देने वाले, चतुरता के चाँद, संसार में सर्वश्रेष्ट और विश्व-विख्यात (हे भारत !) तुम्हारी जय हो ।

(४)

जय जय सुर-धुनि, जय जय दिन मनि,
जय उपवन वन, सघन-गगन-ध्वनि;
जय जल, जय थल, जय जन कल-कल,
जयति सकल जल-थल-नभ चारी ।

अर्थ—गंगा, सूर्य, उपवन, वन, आकाश की घनी आवाज़ (बादलों का गर्जन) जल, थल, मनुष्यों का कल-कल (कोलाहल-शोर) तथा सभी जल, थल

और आकाश में फिरने वाले प्राणी इन सब की जय हो। अर्थात् भारत भूमि पर विचरण करने वाली इन सब वस्तुओं की भी जय हो (भारत-भूमि पर रहने के कारण सब वस्तुएँ धन्य और जय के योग्य हैं)

(५)

जय हिन्दू-जन, जय मुस्लिम-गन,
जैन, पारसी बौद्ध क्रिश्चियन;
विविध धर्म-पथ, सुकृत-कर्म-रत,
जस बरनत श्रीधर बलिहारी।

अर्थ—हिन्दू जनों की, मुसलमानों के समूह की, जैनियों, पारसियों, और क्रिश्चियनों की जय हो, जो अनेक प्रकार के धार्मिक मार्गों और सत्कर्मों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। श्रीधर इन सब की जयकार बुलाता हुआ इन पर बलि जाता है। अर्थात् भारत भूमि के ये सब निवासी भारतीय होने के नाते तथा सत्कर्मों और अपने-अपने धर्मों में तत्पर रहने के कारण कवि द्वारा श्रद्धा के पात्र हैं।

शब्दार्थ—महिमामय=महानता से युक्त, गुणधारी=गुणों को धारण करने वाला, दिव्य=सुन्दर, दिगम्बर=दिग्+अम्बर=दिशा तथा आकाश या-दिशा रूपी वस्त्र, सित=सफेद, रज=धूल, धूसर=लथ-पथ—भरा हुआ, शुचि=पवित्र, कनक=सोना, रजत=चाँदी, मण्डित=शोभित, द्युतिपुंज=शोभा का समूह, प्रसारी=फैलाने वाला, पावन=पवित्र करने वाला, भावन=अच्छा लगने वाला, प्रभाकर=सूर्य, सुमति=चतुर, सुधाकर=चन्द्रमा, विहारी=घूमने वाला, सुरधुनि=गंगा, कल-कल=शोर, थल=जमीन, नभ=आकाश, विविध=अनेक प्रकार के, सुकृत=पुण्य—अच्छे कार्य, रत=लगे हुए, बरनत=वर्णन करता है।

———

आर्यभूमि

[महावीर प्रसाद द्विवेदी]

संकेत—यह कविता श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गई है। इस में कवि ने प्राचीन आर्यभूमि की विशेषताओं का वर्णन किया है।

भाव—इस आर्यभूमि में मुनियों में व्यास आदि और राजाओं में राम सदृश महान् विभूतियाँ हुई हैं। अनेक महात्मा तथा धर्मी लोग यहाँ पैदा हुए थे। स्वदेशाभिमानी तथा देशभक्त, प्रजा-पालक नरेश और वीर पुत्र पैदा करने वाली नारियाँ भी यहाँ पैदा हुई थीं। यह भूमि सब के द्वारा पूजित थी। इसमें शूरवीर, क्षत्रिय, एकता के पुजारी और आदर्शवान् लोग पैदा हुए थे। दिव्य, अस्त्र, बल, विद्या और आध्यात्मवाद की यह जन्मभूमि है। आज जब इस प्रकार के विचार हमारे मन में उठते हैं तो उस गत अतीत के गौरव का स्मरण करते हुए हमें कष्ट होता है। क्या कभी भगवान् हम पर दया करेंगे और हमारे दिन फिर फिरेंगे ?

जहाँ हुए व्यास मुनि प्रधान, रामादि राजा अति कीर्तिमान्।
जो थी जगत्-पूजित धन्य भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि ॥

अर्थ—जहाँ प्रधान मुनि व्यास जैसे तथा यशस्वी राम जैसे राजा हुए थे। जो भूमि संसार द्वारा पूजित तथा धन्य है वही हमारी यह आर्यभूमि है।

—जहाँ हुए साधु महान्, थे लोग सारे धन-धर्मवान्।
जो थी जगत् पूजित धर्म-भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि ॥

अर्थ—जहाँ महान् साधु (महात्मा लोग) हुए थे, जिसमें सब लोग धन और धर्म से युक्त थे और जो संसार द्वारा पूजित थी वही हमारी यह आर्य-भूमि है।

—जहाँ थे सभी निज धर्मधारी, स्वदेश का था अभिमान भारी।
जो थी जगत् पूजित पूज्य भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जहाँ सब लोग अपने धर्म पर चलने वाले थे और जिन्हें अपने देश का अभिमान था, ऐसे लोग इस आर्यभूमि के निवासी थे जो यह आर्यभूमि संसार द्वारा पूजित और पूजने योग्य बनी थी, वही हमारी यह आर्यभूमि है।

हुए प्रजापाल नरेश नाना, प्रजा जिन्होंने सुत तुल्य जाना।
जो थी जगत् पूजित सौख्य भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जहाँ प्रजा के पालने वाले राजा, जिन्होंने प्रजा को पुत्र के समान समझा था, हुए थे। जो संसार द्वारा पजित तथा सब सुखों का स्थान है वही हमारी आर्यभूमि है।

वीराँगना भारत-भामिनी थीं, वीर प्रसू भी कुल-कामिनी थीं।
जो थी जगत् पूजित वीर भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—यह भारत भूमि-भारत के लिए शोभायमान वीरांगना (वीर स्त्री) थी, वीरों को जन्म देने वाली तथा कुल-कामिनी (कुल की श्रेष्ठ वधु) थी। जो यह आर्यभूमि संसार द्वारा पूजित और वीरों की भूमि थी, वही हमारी यह आर्यभूमि है।

स्वदेश सेवा जन लक्ष-लक्ष, हुए जहाँ है निज कार्य दक्ष। चतुर
जो थी जगत् पूजित कार्यभूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जहाँ के लोगों का एक मात्र लक्ष्य (Aim) अपने देश की सेवा रहा था और जहाँ लोग अपने-अपने कार्यों में चतुर थे इस प्रकार की यह भारत भूमि संसार के द्वारा पूजित और कार्यक्षेत्र बनी हुई थी, यही है हमारी आर्यभूमि।

स्वदेश कल्याण सुपुण्य जान, जहाँ हुए यत्न सदा महान।
जो थी जगत् पूजित पुण्य भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जिस आर्यभूमि में अपने देश का कल्याण करता लोग उत्तम पुण्य

समझते थे और इसी कारण इस कल्याण-कार्य के लिए जहाँ बड़े-बड़े प्रयत्न हुआ करते थे. जो संसार द्वारा पूज्य (पूजा के योग्य) एवं पवित्र भूमि थी वही हमारी यह आर्यभूमि है।

> स्वदेश के शत्रु स्वशत्रु माने, जहाँ सभी ने शर-चाप ताने।
> जो थी जगत् पूजित शौर्य भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जहाँ पर लोग अपने देश के शत्रुओं को अपना शत्रु मानते थे, जहाँ सबों ने धनुष-बाण तान लिये थे और जो संसार द्वारा पूजित तथा शूर-वीरता की भूमि थी, वही हमारी यह आर्यभूमि है।

> विभिन्न थे वर्ण तथापि सारे, थे एकताबद्ध जहाँ हमारे।
> जो थी जगत् पूजित ऐक्य, भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जिस भूमि पर भिन्न-भिन्न जातियाँ होते हुए भी वे सब एकता के सूत्र में पिरोई हुई थीं, जो संसार द्वारा पूजित एवं एकता की भूमि थी वही हमारी यह आर्यभूमि है।

> थी मातृभूमि प्रति भक्ति भारी, जहाँ हुए शूर यशोऽधिकारी।
> जो थी जगत् पूजित कीर्ति भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जिसके निवासियों की मातृभूमि के प्रति भारी भक्ति थी, जहाँ यश के अधिकारी (यशस्वी) शूर (वीर) हुए थे, जो संसार द्वारा पूजित तथा यश का स्थान है, वही हमारी यह आर्यभूमि है।

> दिव्यास्त्र-विद्याबल, दिव्ययान, छाया जहाँ था अति दिव्य ज्ञान।
> जो थी जगत् पूजित दिव्य-भूमि, वही हमारी यह आर्यभूमि॥

अर्थ—जहाँ सुन्दर शस्त्र-विद्या (The knowledge of weapons), बल तथा सुन्दर यात्रा के साधनों (Traffic) का अत्युन्त सुन्दर ज्ञान व्यापक था अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकार के वैज्ञानिक शस्त्रों (Scientific weapons) और यात्रा के साधनों के बनाने का ज्ञान फैला हुआ था, जो संसार के द्वारा पूजित एवं सुन्दर भूमि थी, वही हमारी यह आर्यभमि है।

विचार ऐसे जब चित्त आते, विषाद पैदा करते सताते ।
न क्या कभी देव दया करेंगे, न क्या हमारे दिन भी फिरेंगे ॥

अर्थ—कवि कहता है कि जब हमारे चित्त में ऐसे विचार आते हैं अर्थात् जब हम आर्यभूमि के इस बीते हुए सुनहरे भूतकाल (Past time) का चिन्तन करते हैं तो वे चिन्तन या विचार हमारे चित्त में कष्ट पैदा करते हुए हमें सताया करते हैं । कवि संभावना करता है कि क्या कभी भगवान् हम पर दया करेंगे, क्या हमारे दिन फिरेंगे नहीं । अर्थात् हमारे वे बीते हुए सुन्दर दिन क्या फिर कभी नहीं आयेंगे ?

शब्दार्थ—कीर्तिमान=यश वाले, जगत् पूजित=संसार से पूजित, धर्म-धारी=धर्म को धारण करने वाले, प्रजापाल=प्रजा को पालने वाले, सुत-तुल्य=पुत्र के समान, सौख्यभूमि=सुख का स्थान, वीर-प्रसू=वीर पुत्र पैदा करने वाली, लक्ष्य=उद्देश्य, (Aim), कार्यदक्ष=काम में चतुर, शरचाप=धनुष-बाण, विभिन्न=अनेक प्रकार के, वर्ण=जाति, एकताबद्ध=एकता में बँधे हुई (United), दिव्य=सुन्दर, अस्त्र विद्या=शस्त्रों की विद्या (Knowledge of weapons) यान=यात्रा का साधन, (Traffic).

———

उपासना-पंचक

[नाथूराम 'शंकर']

संकेत—यह पद्य भाग नाथूराम 'शंकर' की 'शंकर सरोज' पुस्तक में से लिया गया है। इसमें कवि ने आत्मा और परमात्मा की एकता दिखलाते हुए अपनी आत्मा का माया-जाल में फँस जाने के कारण उस परमात्मा से विभिन्नता तथा अपने आपकी विस्मृति दिखलाते हुए फिर उसी का रूप बन जाने की कामना प्रकट की है। इस माया-जाल में फँस जाने से परमात्म स्वरूप यह जीव ईश्वर की व्यापक महिमा से उतर कर और संसार की सीमित दिशा में बँधकर अपनी महानता को खो बैठता है। उसी महानता अर्थात् अनन्त शक्ति प्राप्त करने की चाह लेकर कवि ईश्वर से प्रार्थना करता है।

भाव—ईश्वर अजन्मा (जन्महीन) है और जीव भी उसका अंश होने के कारण अजन्मा ही है। जिस प्रकार परमात्मा अलंकार है उसी प्रकार जीव भी, इसलिए जीव और ब्रह्म का मेल कभी मिट नहीं सकता (अविद्या के तंग दायरे में पड़कर भी जीव उसका अंश होने के कारण उसके रूप से अलग नहीं है) किन्तु वह ब्रह्म इस जीव को संसार के माया-जाल में डालकर उसे कर्म-योगी एवं भोगी बना देता है। वह ब्रह्म सबसे बड़ा है पर जीव को लघुता के चक्कर में डाल देता है। जहाँ उसकी एकता अनेकता नहीं होगी, वहाँ जीव की अनेकता भी एकता नहीं हो सकती। (ब्रह्म एक है उसके अंश जीव अनेक हैं) वह सर्वज्ञ (सब कुछ जानने वाला) है पर जीव अल्पज्ञ (थोड़ा जानने वाला) है। इसी प्रकार उसे संसार का बंधन नहीं बाँध सकता परन्तु इस बंधन से मुक्त होकर जीव को मुक्ति नहीं मिलती। हे भगवन् आनन्द दाता, तुम मुझे इस मुसीबत से क्यों नहीं छुड़ाते ? मैं तुम्हारी दया का सदा भिखारी रहूँगा।

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है।
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है ॥
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा ।
किसी काल में नाश मेरा न होगा ॥
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥

अर्थ—हे परमात्मन् अजन्मा (न जन्मने वाला) होने के कारण तेरा कोई आरम्भ (आदि—Beginning) नहीं है। कवि अपने लिए कहता है कि उसका जन्म भी किसी से नहीं हुआ है अर्थात् परमात्मा का अंश होने के कारण जिस प्रकार वह अजन्मा और अनादि है उसी प्रकार कवि भी। (हे परमात्मन्), तू सदा रहेगा, तेरा अन्त (नाश) कभी नहीं होगा। तू खिलाड़ी है और तुम्हारा यह संसार रूपी खेल (सदा) रहेगा। इसी प्रकार मेरा भी तुम्हारे साथ मेल कभी नहीं मिटेगा। अर्थात् संसार के सब जीव तेरे ही रूप होने के कारण जिस प्रकार उनका तुम्हारे साथ मेल कभी नहीं मिट पायेगा, इसी प्रकार कवि की आत्मा या जीव का तुम्हारे साथ मेल नहीं मिटेगा।

अजा को अकेली न तू छोड़ता है।
मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है ॥
न तू भोग भोगे, बना विश्व-योगी ।
किया कर्म योगी मुझे भोग भोगी ॥
निराला न तेरा बसेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥

अर्थ—तू इस प्रकृति को अकेले नहीं छोड़ता मुझे भी इसी में घसीटकर माया-जाल के साथ जोड़ देता है। तू स्वयं तो साँसारिक भोग नहीं भोगता और विश्व-योगी (पूर्ण योगी) बना है परन्तु मुझे तुमने कर्मयोगी (साँसारिक कार्य-कर्त्ता) और भागों के भोगने वाला बना रखा है। अर्थात् जो दर्जा तुम्हारा है वह दर्जा तुमने मुझे नहीं दिया। तुम्हारा निराला स्थान निराला नहीं रहेगा

अर्थात् तुम संसार की रग-रग में वास कर रहे हो। मेरा तुम्हारे साथ मेल मिटेगा नहीं बल्कि रहेगा।

निराकार आकार तेरा नहीं है।
किसी भाँति का मान मेरा नहीं है॥
सखा सर्व संघात से तू बड़ा है।
मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है॥
उजाला रहेगा अँधेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥

अर्थ—तेरा आकार निराकार (शकलहीन) नहीं है बल्कि साकार भी है और निराकार भी। मेरा अपना किसी वस्तु पर अभिमान नहीं है अर्थात् सब कुछ तेरा है मेरा कुछ नहीं। तू सबका मित्र तथा संसार में सबसे बड़ा है किन्तु इसके विपरीत मुझे तुच्छता (छोटापन) में ही रहना पड़ रहा है अर्थात् तू तो सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् होने से सबसे बड़ा है पर तेरा ही रूप मैं इस माया-जाल में फँसकर अति तुच्छ हो चुका हूँ। तेरा प्रकाश भी रहेगा और अँधेरा भी रहेगा। प्रकाश तथा अन्धकार दोनों रहेंगे। मेरा तेरा मेल मिटेगा नहीं बल्कि रहेगा।

अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा।
न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा॥
न त्यागे तुझे शक्ति सर्वज्ञता की।
लगी है मुझे व्याधि अल्पज्ञता की॥
दुई का घटा टोप घेरा रहेगा।
मिटेगा·····················॥

अर्थ—तेरी एकता (Oneness) अनेकता नहीं होगी। मेरी अनेकता एकता न हो पायेगी अर्थात् तुम एकत्व हो जो अनेक कभी नहीं हो सकते। इसके विपरीत जीव अनेक हैं और वे एक नहीं हो सकते। तुम्हें सर्वज्ञता (सब कुछ जानने) की शक्ति नहीं त्याग पाती और मुझे अल्पज्ञता (Little knowing) की बीमारी लगी हुई है। यह द्वैध भाव (Dualism) की भयंकर आँधी घिरी ही रहेगी। यह मेल मिटेगा नहीं बल्कि रहेगा।

तुझे बंध-बाधा सताती नहीं है।
सुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है ॥
प्रभो शंकरानंद आनंद-दाता ।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता ॥
दया दान का दीन चेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं........................॥

अर्थ – तुझे संसार के बंधन की बाधा (रुकावट—Restriction) नहीं सताती किन्तु मुझे इस बंधन की बाधा में पड़ने के कारण मुक्ति नहीं मिलती । हे प्रभो शंकरानन्द और आनन्द के दाता, मुझे मुसीबतों से क्यों नहीं छुड़ाते ? यह दीन चेला तुम्हारी दया के दान का भिखारी है । हमारा मेल नहीं मिटेगा बल्कि रहेगा ।

शब्दार्थ —अजन्मा = न जन्मने वाला, अन्त = नाश, जगज्जाल = संसार का जाल—माया ममता आदि, भोग-भोगी = भोगों को भोगने वाला, आकार = शकल—सूरत, मान = अभिमान, सखा = मित्र, संघात = समूह (Collection), तुच्छता = छोटापन, सर्वज्ञता = (सब कुछ जानना—Knowledge of whole creation), अल्पज्ञता = सीमित ज्ञान (Little knowledge).

२.

विदा

[अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

संकेत—यह पद्य भाग श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रिय प्रवास में से लिया गया है भगवान् श्रीकृष्ण के बलराम के साथ मथुरा की तैयारी करने पर वहाँ की जड़ तथा चेतन प्रकृति में जो कृष्ण के वियोग की ज्वाला धधक उठी उसका चित्रण (वात्सल्यरस की छाप देकर) कवि ने खूब सुन्दर ढंग से इस कविता में प्रस्तुत किया है।

भाव—कृष्ण के मथुरा की ओर प्रस्थान करने पर खिन्न होकर तथा आँसू बहाती हुई यशोदा घर के बाहर निकली। सब ब्रज की स्त्रियाँ रोती-धोती इकट्ठी हो गईं। इतने में भोले-भाले बालकों की टोली भी कृष्ण-वियोग में दीन-हीन तथा दुखी हो कर वहाँ आ गई। सब जी भर कर रोये। आज उनका प्यारा ब्रज का सहारा और आँखों का तारा कृष्ण उन्हें सूना छोड़ कर मथुरा जा रहा था। कोई बावला हो कर आहें भरता, कोई फूट-फूट कर रोता और कोई चिल्ला उठता—प्यारे, हमें अनाथ छोड़ कर कहाँ जा रहे हो? इतने में रोता-धोता एक आभीर बूढ़ा आया और कहने लगा—कोई ऐसा यत्न सोचो जिससे मेरे प्यारे दोनों कुँवर ब्रज से अलग न हों। मेरा लाल ब्रजभूमि का प्राण है इसके जाने पर हम कैसे जियेंगे? मेरा लाल ब्रज के तारों में चन्द्रमा है इसके जाने पर ब्रज प्रकाशहीन हो जायगा। फिर अक्रूर उस बूढ़े को आश्वासन देने लगे—आप मत घबराइये, आपके दोनों लाल कुछ दिनों तक आ जायेंगे।

इतने में एक चतुर वृद्धा भी वहाँ आई। उसने श्रीकृष्ण के मुख-कमल का स्पर्श कर प्यार से बलाएँ लीं और कहा—प्यारे, तू मत जा। देख, तेरे वियोग से तेरी माता को कितनी बड़ी पीड़ा होगी। फिर उसने कहा—चाहे राजा रूठ जाये, चाहे मुझे थाली-लोटा बेच कर भी दण्ड देना पड़ जाये और चाहे मुझे

कन्दमूल खाकर रहना भी पड़ जाये परन्तु मैं किसी भी शर्त पर तुम्हें आँखों से अलग नहीं कर सकती। तुम मथुरा जा रहे हो, कंस का क्या ठिकाना। इन बातों को सोच कर मेरा जी बहुत डरता है। वृद्धा की ऐसी-ऐसी बहुत सी करुण पूर्ण बातें सुन कर कृष्ण ने कहा—माता, तू इतनी व्याकुल क्यों हो रही हो ? मैं कुछ ही दिनों तक आ जाऊँगा।

इतने में एक ग्वाला दौड़ता हुआ आया और बोला—आप की सब गायें आज बन को चरने नहीं जा रही हैं। वे न तो दाँतों से घास खाती हैं, न बच्चों को दूध पिलाती हैं। देखो सब गायें श्रीकृष्ण की ओर ही आ रही हैं। इतने में सचमुच गायें पूँछें ऊँची किये कृष्ण की ओर दौड़ी आई। ग्वाला भी फूट-फूट कर रो पड़ा और कहने लगा मेरे कुँवर यों सब को रुला कर मथुरा मत जाओ।

इधर घर का कौआ भी दुःखी होकर बोलना बन्द कर बैठा। वह चिल्ला कर केवल इतना ही कह रहा था—मेरे कान्हा, यों सब को रुला कर मत जाओ। अक्रूर ने सोचा कि इस प्रकार ब्रजवासियों में विरह का समुद्र और भी उमड़ कर ज्वार-भाटा पैदा करेगा, उसने झट कृष्ण और बलराम को रथ पर सवार होने के लिये कहा। इतने में श्रीकृष्ण ने पहले ब्राह्मणों की पाद-वन्दना की तदनन्तर नन्द तथा यशोदा के पाओं में गिर कर उनसे विदा ली। इस समय यशोदा दोनों भाइयों को रथ पर सवार देख कर विवश हो उठी। आँखों से आँसुओं की धारा बहाते हुए पगली की भाँति वह नन्द से कुछ बोली इस समय उसका हृदय पुत्र-विरह से फटा जा रहा था।

आई वेला हरि गमन की, छा गई खिन्नता सी,
थोड़े ऊँचे नलिन पति हो जा छिपे पादपों में।
आगेरे सारे स्वजन करके साथ अक्रूर को ले,
धीरे-धीरे सजनक रूढ़े सदन में से मुरारी॥

अर्थ—जब श्रीकृष्ण के मथुरा जाने का समय आ गया तो भगवान् सूर्य भी थोड़े ऊँचे हो कर वृक्षों की ओट में जा छिपे। श्रीकृष्ण अपने आगे

बन्धुओं को करके तथा अक्रूर को साथ ले कर धीरे-धीरे पिता के साथ घर के बाहर निकले।

आते आँसू अति कठिनता से सँभाले दृगों के,
होती खिन्ना हृदय-तल के सैकड़ों संशयों से।
थोड़ा पीछे प्रिय तनय के, भूरि शोकाभिभूता,
नाना वामा सहित निकली गेह में से यशोदा॥

अर्थ—आते हुए आँसुओं को अति कठिनता से संभालते हुए और अनेक शंकाओं के कारण हृदय में दुखिता होकर शोक से अत्यन्त व्याकुल यशोदा प्यारे पुत्र (कृष्ण) के थोड़ा पीछे अर्थात् बाद में अनेक स्त्रियों को साथ ले कर घर से बाहर निकली।

द्वारे आया व्रज नृपति को देख यात्रा निमित्त,
भोला-भाला निरख मुखड़ा फूल से लाडिलों का।
खिन्ना दीना परम लख के नन्द की भामिनी को,
चिन्ता डूबी सकल जनता हो उठी कम्पमाना॥

अर्थ—फूल के समान कोमल प्यारों (दोनों भाइयों) का भोला-भाला मुख, जो यात्रा के लिये राजा नन्द के द्वार पर पहुँचा था अर्थात् यात्रा की तैयारी के लिये राजा से आज्ञा प्राप्त करने के लिये उसके द्वार पर आया था, देख कर और नन्द की स्त्री (यशोदा) को अत्यन्त दीन-हीन और चिन्ता-युक्त देख कर सारी जनता चिन्ता में डूब गई तथा दुख से कम्पित हो उठी।

कोई रोया सलिल न रुका, लाख रोके दृगों का,
कोई आहें सदुख भरता, हो गया बावला-सा।
कोई बोला सकल व्रज के जीवनाधार प्यारे,
यों लोगों को व्यथित करके आज जाते कहाँ हो॥

अर्थ—उनमें से कोई रो पड़ा और लाखों यत्न करने पर भी उसकी आँखों का पानी नहीं रुक सका। कोई दुःख के साथ आहें भर कर पागल सा हो गया। कोई कहने लगा—हे व्रज के जीवन के आधार (जीवन के आश्रय) प्यारे कृष्ण, इस प्रकार लोगों को कष्ट में डाल कर आज कहाँ जाते हो?

रोता धोता विकल बनता एक आभीर बूढ़ा,
दीनों के-से वचन कहता पास अक्रूर के आ।
बोला—कोई जतन नज को आप ऐसा बतावें,
मेरे प्यारे कुँवर मुझसे आज न्यारे न होवें॥

अर्थ—एक आभीर (ग्वाला—खेतीहर) बूढ़ा रोता-धोता हुआ, दुखी होकर और दीनों जैसे वचन कहता हुआ अक्रूर के पास आया और बोला—मुझे ऐसा कोई यत्न बता दो कि जिससे मेरे प्यारे दोनों कुँवर (कृष्ण और बलराम) मुझ से अलग न हों।

मैं बूढ़ा हूँ यदि कुछ कृपा आप चाहें दिखाना,
तो मेरी है विनय इतनी श्याम को छोड़ जावें।
हा ! हा ! सारी ब्रज-अवनि का प्राण है लाल मेरा,
क्यों जीएँगे हम सब उसे आप ले जायेंगे जो॥

अर्थ—बूढ़ा (नन्द बाबा) कहने लगा—मैं बूढ़ा हूँ, अगर आप कुछ कृपा मुझ पर दिखाना चाहें तो मेरी केवल इतनी ही प्रार्थना है कि आप श्याम (कृष्ण) को छोड़ जावें अर्थात् उसे अपने साथ मथुरा मत ले जायें। आह ! सारी ब्रजभूमि (वृन्दावन) का प्राण यह मेरा लाल है। अगर आप इसे ले जायेंगे तो हम कैसे जियेंगे ?

रत्नों की है न तनिक कमी आप लें रत्न ढेरों,
सोना-चाँदी सहित धन भी गाड़ियों आप ले लें।
गायें ले लें गज तुरंग भी आप ले लें अनेकों,
लेवें मेरे न निज धन को हाथ मैं जोड़ता हूँ॥

अर्थ—मुझे रत्नों की जरा भी कमी नहीं है, आप ढेरों के ढेर रत्न मुझ से लें। सोना, चाँदी के साथ धन की गाड़ियाँ भी मुझ से लें। इसी प्रकार गायें, हाथी और घोड़े भी अनेकों मुझ से लें पर मेरे धन श्रीकृष्ण को आप न ले जाएँ मैं इस पर हाथ जोड़ता हूँ।

जो है प्यारी अवनि ब्रज की, यामिनी के समाना,

मैं तारों के सहित सब गोपाल हैं तारकों से।

मेरा प्यारा कुँवर उसका एक ही चन्द्रमा है,
छा जावेगा तिमिर यह जो दूर होगा दृगों से ॥

अर्थ—यह प्यारी व्रजभूमि रात के समान है और पिताओं के साथ सब ग्वाल-बाल इसमें तारों के समान है। मेरा प्यारा लड़का कृष्ण उन में चन्द्रमा के समान है। जब यह कृष्ण रूपी चाँद आँखों से दूर होगा तो सारी व्रजभूमि में अँधेरा छा जाएगा।

सच्चा प्यारा सकल व्रज का वंश का है उजाला,
दीनों का है परम धन और वृद्ध का नेत्र-तारा।
बालाओं का प्रिय स्वजन औ' बन्धु है बालकों का,
ले जाते हैं सुर तरु कहाँ आप ऐसा हमारा ॥

अर्थ—यह कृष्ण प्यारा, सच्चा और व्रज के वंश का उजाला (प्रकाश) है। यह दीनों (निधनों) का धन और बूढ़ों के आँखों का तारा है। इसी प्रकार स्त्रियों का प्यारा स्वजन (सम्बन्धी) और बालकों का बन्धु है। ऐसे हमारे इस कल्प वृक्ष के समान कृष्ण को आप कहाँ ले जा रहे हैं?

बूढ़े के ये वचन सुन के नेत्र से नीर आया,
आँसू रोके परम मृदुता साथ अक्रूर बोले।
क्यों होते हैं दुःखित इतनी मानिए बात मेरी,
आ जावेंगे ··दिवस में आपके लाल दोनों ॥

अर्थ—बूढ़े के वचन सुनकर अक्रूर के नेत्रों में पानी आ गया, आँसुओं को रोक कर वे अति कोमलता के साथ बोले—आप इतने दुःखी क्यों होते हैं, मेरी बात मानिये कि आपके लाल कृष्ण कुछ ही दिनों के अन्दर आ जावेंगे।

आई प्यारे निकट श्रम से एक वृद्धा प्रवीणा,
हाथों से छू कमल-मुख को प्यार से ली बलायें।
पीछे बोली दुःखित स्वर से तू कहीं जा न बेटा,
तेरी माता आह कितनी बावली हो रही है ॥

अर्थ—इतने में एक चतुर वृद्धा (यशोदा) थकावट भरती हुई उस प्य(कृष्ण) के पास आई। उसके मुख कमल को छूकर तथा बलि-बलि जाकर

पीछे दुःखित आवाज में बोली—हे बेटा, तू कहीं न जा। ओफ देख, तेरी माता (तेरे विदा होने पर) कितनी पागल हो रही है।

जो रूठेगा नृपति ब्रज का वास ही छोड़ दूँगी,
ऊँचे-ऊँचे भवन तज के जंगलों में बसूँगी,
खाऊँगी फूल फल दल को व्यंजनों को तजूँगी,
मैं आँखों से अलग न तुझे लाल मेरे करूँगी॥

अर्थ—अगर इस पर ब्रज का राजा (नन्द) रूठ जायगा तो मैं यहाँ रहना ही छोड़ दूँगी। ये ऊँचे-ऊँचे महल छोड़कर जंगलों में वास करूँगी। वहाँ रहकर फूल, फल और दल खाऊँगी और व्यंजनों (भाजियों) को छोड़ दूँगी। हे मेरे लाल, मैं ये सब कठिनाइयाँ सहूँगी पर तुझे अपने से अलग नहीं करूँगी।

जाओगे क्या कुँवर मथुरा कंस का क्या ठिकाना,
मेरा जी है बहुत डरता क्या न जाने करेगा।
मानूँगी मैं न सुरपति को राज ले क्या करूँगी,
तेरा प्यारा वदन लख के स्वर्ग को मैं तजूँगी॥

अर्थ—हे कुँवर, तुम मथुरा जाओगे, पर कंस का क्या ठिकाना, अर्थात् वह आगे ही तुझ पर वार करने को तुला हुआ है जब तुम उसी की नगरी में चले जाओगे तो न मालूम वह क्या कर बैठे। मेरा जी बहुत डर रहा है कि न जाने वह क्या करे। मैं इन्द्र को नहीं मानूँगी, राज लेकर भी मैं क्या करूँगी। केवल मात्र तेरा प्यारा मुख देखकर मैं सोने को भी त्याग दूँगी अर्थात् तेरा प्यारा मुख देखने के लिए मैं सब कुछ छोड़ सकती हूँ।

जो चाहेगा नृपति मुझ से, दण्ड दूँगी करोड़ों,
लोटा-थाली सहित तन के वस्त्र भी बेच दूँगी,
जो माँगेगा हृदय वह तो काढ़ दूँगी उसे भी,
बेटा, तेरा गमन मथुरा मैं न आँखों लखूँगी॥

अर्थ—राजा मुझ से जो कुछ दण्ड चाहेगा मैं दूँगी। लोटा, थाली तथा कपड़े तक मैं बेच दूँगी। जो वह हृदय चाहेगा उसे भी निकाल कर दे दूँगी।

पर हे बेटा, तेरा मथुरा जाना मैं आँखों से नहीं देखूँगी । अर्थात् मैं सब कुछ न्योछावर कर सकती हूँ परन्तु तेरा मथुरा जाना नहीं देख सकती ।

कोई भी है न सुनता जा किसे मैं सुनाऊँ,
मैं हूँ मेरा हृदय-तल है, है व्यथाएँ अनेकों ।
बेटा तेरा सरल मुखड़ा शान्ति देता मुझे है,
क्यों जीऊँगी कुँवर बतला जो चला जाएगा तू ।।

अर्थ—मेरी बात कोई नहीं सुनता । मैं किसे जाकर सुनाऊँ । मैं हूँ और मेरा हृदय है किन्तु इसमें अनेक पीड़ाएँ हैं । हे बेटा, तेरा सरल (सीधा-साधा) मुख मुझे शान्ति देता है । तू ही बतला कि तेरे चले जाने पर मैं कैसे जीऊँगी ।

प्यारे तेरा गमन सुन के, दूसरे रो रहे हैं,
मैं रोती हूँ सकल ब्रज है वारि लाता दृगों में ।
सोचो बेटा उस जननि की क्या दशा आज होगी,
तेरा जैसा सबल जिसका एक ही लाडिला है ।।

अर्थ—हे प्यारे, तेरा जाना सुनकर दूसरे लोग रो रहे हैं । मैं रोती हूँ, सारा वृन्दावन (तेरी विदाई पर) आँखों में पानी ला रहा है अर्थात् रो रहा है । हे बेटा, तुम सोचो आज उस माता की क्या दशा होगी, जिसका तुम्हारे जैसा भोला-भाला एक ही लाडिला (प्यारा बालक) है ।

प्राचीना की सदुःख सुन के सर्व बातें मुरारी,
दोनों आँखें सजल करके प्यार के साथ बोले ।
मैं आऊँगा कुछ दिन गये बाल होगा न बाँका,
क्यों माता तू विकल इतना आज यों हो रही है ।।

अर्थ—वृद्धा की दुःख-भरी सब बातें सुनकर कृष्ण दोनों आँखें गीली करते हुए प्यार से बोले—मैं कुछ दिनों के बीतने पर आ जाऊँगा । इस बीच मेरा बाल भी बाँका न होगा । हे माता, तू आज इतनी व्याकुल होकर क्यों बेकार रो रही है ?

दौड़ा ग्वाला ब्रज नृपति के सामने एक आया,
बोला गायें सकल बन को आपकी हैं न जातीं।
दाँतों से हैं न तृण गहतीं, हैं न बच्चे पिलातीं,
हा ! हा ! मेरी सुरभि सब को आज क्या हो गया है ।।

अर्थ—इतने में एक ग्वाला दौड़ कर नन्द के पास आकर कहने लगा—आपकी सब गायें वन को नहीं जा रही हैं। वे दाँतों से घास नहीं खातीं और बछड़ों को दूध भी नहीं पिलातीं। हा ! मेरी सब गायों को आज क्या हो गया है ?

देखो, देखो, सकल हरि की ओर ही आ रही हैं,
रोके भी हैं न रुक सकतीं बावली हो गई हैं।
यों ही बातें सदुःख कहके फूट के ग्वाल रोया,
बोला मेरा कुँवर सबको यों रुला के न जाओ ।।

अर्थ—ग्वाला कहने लगा—देखो, देखो, वे सब गायें हरि (कृष्ण) की ओर ही आ रही हैं। वे तो रोकने पर भी नहीं रुकतीं पागल हो गई हैं। इस प्रकार दुःख-भरी बातें करते हुए ग्वाला फूट-फूट कर रोने लगा और बोला—मेरे कान्ह, इस प्रकार सबको रुला कर मथुरा न जाओ।

रोता ही था जब वह तभी नन्द की सर्व गायें,
दौड़ी आईं निकट हरि के पूँछ ऊँची उठाये।
वे थीं खिन्ना विपुल बिकला वारि था नेत्र लाता,
ऊँची आँखों कमल मुख थीं देखती शंकिता हो ।।

अर्थ—जब वह (ग्वाला) रोता ही था तभी नन्द की सब गायें ऊँची पूँछें किये हुए कृष्ण के पास दौड़ी आईं। वे उस समय दुखी तथा अत्यन्त व्याकुल थीं, उनकी आँखों से पानी बह रहा था (वे रो रही थीं) और शंकित होकर ऊँची-ऊँची आँखें करके कृष्ण के मुख-कमल की ओर देख रही थीं।

काकातूआ महर-गृह के द्वार का भी दुखी था,
भूला जाता सकल स्वर था उन्मना हो रहा था।
चिल्लाता था, अति विकल था और यही बोलता था,
यों लोगों को व्यथित करके लाल जाते कहाँ हो ।।

अर्थ—नन्द के द्वार का तोता भी दुःखी था, वह उदासीन हो रहा था और अपना स्वर भी भूलता जा रहा था। चिल्लाता था, अत्यन्त व्याकुल था और यही (बार-बार) बोलता था—हे लाल, इस प्रकार लोगों को पीड़ित करके कहाँ जाते हो ?

पक्षी औ' सुरभि सबकी देख ऐसी दशायें,
थोड़ी जो थी अहह ! वह भी धीरता दूर भागी।
हा हा ! शब्दों सहित इतना फूट के लोग रोये,
हो जाती थी निरख जिसको भग्न छाती शिला की ॥

अर्थ—हाय ! पक्षी और गायों सबकी ऐसी दशा देख कर जो थोड़ी बहुत धीरता थी वह भी दूर भाग गई। हाय ! शब्दों के साथ लोग इतना फूट कर रोये कि उसे देख कर चट्टान की छाती भी फट जाती।

आवेगों के सहित बढ़ता देख सन्ताप सिन्धु,
धीरे-धीरे व्रज-नृपति से खिन्न अक्रूर बोले।
देखा जाता व्रज-दुःख नहीं शोक है वृद्धि पाता,
आज्ञा देवें जननि पग छू यान पै श्याम बैठें ॥

अर्थ—आवेगों के साथ दुःख का समुद्र बढ़ता हुआ देख कर अक्रूर धीरे-धीरे खिन्न मन होकर नन्द से कहने लगे—अब व्रज का दुःख देखा नहीं जा सकता, शोक बढ़ रहा है। आप आज्ञा दें कि श्रीकृष्ण माता के पैर छूकर (पाद-वन्दना कर) रथ पर बैठ जायें।

आज्ञा पाके निज जनक की; मान अक्रूर बातें,
जेठे भ्राता सहित जननी-पास गोपाल आये।
छू माता के पग-कमल को धीरता साथ बोले,
जो आज्ञा हो जननि अब तो यान पै बैठ जाऊँ ॥

अर्थ—अपने पिता की आज्ञा पाकर और अक्रूर की बातें मान कर कृष्ण अपने बड़े भाई के साथ माता के पास आये। माता के चरण-कमलों को छूकर कृष्ण धीरज से बोले—हे माता, अगर आज्ञा हो तो मैं रथ पर बैठ जाऊँ।

दोनों प्यारे कुँवर वर के यों विदा माँगते ही,
रोके आँसू जननी-दृग में एक ही साथ आये।
धीरे बोली परम दुःख से जीवनाधार जाओ,
दोनों भैया विधु-मुख हमें लौट आके दिखाओ ॥

अर्थ—दोनों प्यारे बालकों के इस प्रकार बिदा माँगने पर माता की आँखों में रुके हुए आँसू एक साथ ही आ गए। फिर माता धीरे से बोली—हे जीवन के आधार (जीवन के सहारे) तुम दोनों, जाओ। दोनों भाई लौट कर अपने मुख-चन्द्र हमें दिखाओ।

धीरे-धीरे सुपवन बहे स्निग्ध हों अंशुमाली,
प्यारी छाया विटप वितरें शान्ति फैले बनों में।
बाधाएँ हों शमन पथ की दूर हों आपदायें,
यात्रा, तेरी सफल सुत हो क्षेम हो गेह जाओ ॥

अर्थ—माता यशोदा कहने लगी—हे पुत्र, तुम्हारे आराम के लिए सुन्दर हवा धीरे-धीरे बहे, सूर्य कोमल बनें, पेड़-पौधे प्यारी छाया दें, बनों में शान्ति फैल जाये, मार्ग की रुकावटें शान्त हों, विपत्तियाँ दूर हों, तेरी यात्रा सफल हो और घर में सब प्रकार का कल्याण हो।

लेके माता-चरण-रज को श्याम औ' राम दोनों,
आये विप्रों निकट उनके पाँव की वन्दना की,
भाई बन्दों सहित मिलके हाथ जोड़ा बड़ों को,
पीछे बैठे विशद रथ में बोध देके सबों को ॥

अर्थ—श्याम और राम दोनों माता की चरण-धूलि लेकर फिर ब्राह्मणों के पास जाकर उनके पाँव की वन्दना करने लगे। फिर उन दोनों ने भाई बन्धुओं के साथ मिल कर बड़ों के आगे हाथ जोड़े और तत्पश्चात् सबको बोध (जतला कर) देकर रथ पर बैठ गये।

दोनों प्यारे कुँवर वर को यान पै देख बैठा,
आवेगों से विपुल विवशा हो उठी नन्दरानी।
आँसू आते युगल-दृग से वारिधारा बहा के,
बोली दीना सदृश पति से दग्ध हो हो दुःखों से ॥

अर्थ—दोनों प्यारे बालकों को रथ पर बैठा देखकर नन्दरानी (यशोदा) हृदय के प्रवाह का बलवान् वेग पाकर विवश (लाचार) हो उठी। दोनों आँखों से आँसू बहा कर दीन-हीन के समान होकर तथा दुःखों से दग्ध होकर पति से बोली।

शब्दार्थ—खिन्नता=उदासी, नलिन-पति=सूर्य, सजनक=पिता के साथ, सदन=घर, दृग=आँखें, शोकाभिभूता=शोक से मारी हुई, वामा=स्त्री, सलिल=पानी, व्यथित=दुखित, आभीर=ग्वाला—किसान, तुरग=घोड़ा, यामिनी=रात, तिमिर=अँधेरा, सुरतरु=कल्प वृक्ष, नीर=पानी, मृदुता=कोमलता, प्रवीण=चतुर, नृपति=राजा, भवन=घर, व्यञ्जन=भाजी—सलोना, सुरपति=इन्द्र, व्यथा=पीड़ा, सजल=गीला, तृण=घास, सुरभि=गाय, विपुल=विशाल—बड़ा—मोटा—भारी—अधिक, विकला=व्याकुल, काकातूआ= तोता, व्यथित=दुखी, निरख=देखकर, सन्ताप-सिन्धु=दुःख का समुद्र, जेठा=बड़ा, यान=रथ—गाड़ी, विधुमुख=चन्द्रमा जैसा मुख, सुपवन=सुन्दर हवा, अँशुमाली=सूर्य, विटप=पौधे, शमन=शान्ति, आपदायें=मुसाबतें, चरण-रज=पैरों की धल, विशद=विशाल—बड़ा, आवेग=हृदय का बलवान प्रवाह, हृदय का वेग, विवशा=लाचार, वारिधारा=पानी की धार, सदृश=समान—तुल्य।

———

कोर-कसर

[श्री अयोध्यासिंह, उपाध्याय]

संकेत—ये पद्य भाग श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के "चोखे चौपदे" से लिये गए हैं, इसमें कवि ने मनुष्य की व्यावहारिक (Practical) जिन्दगी की कमियों का चुभती हुई भाषा में संकेत किया है। ऐसे बहुत से आवश्यक आदर्श हैं जिन्हें मनुष्य अज्ञान वश अनदेखा सा कर जाता है। कवि उनकी ओर हमारा ध्यान दिला कर हमें जीवन के अंग भूत कुछ कर्त्तव्यों के पालन की ओर अग्रसर करता है और साथ ही हमारी गल्तियों के लिये हमें जागृत करता है।

भाव—कवि कहता है—देश के दुःखों की ओर आँखें ऊँची न करने वालों की आँखें ऊँची नहीं हो सकतीं। देश की सैकड़ों लड़कियों को बलि होते न देखने वालों को हम आँख वाले नहीं कह सकते। इसी प्रकार जब परदे वालियों का बेपरद देख कर भी हम उपेक्षा कर जाते हैं तो हमारी आँखों पर परदा पड़ा हुआ होता है। सामने सिसकती हुई अबलाओं को खुली आँखों देखने वालों की आँखें खुली हुई नहीं होतीं, सामने धर्म का कचूमर निकल रहा है और हमारी आँखें बिगड़ चुकी हैं तो भीतरी आँख भी क्यों नहीं फूट जाती। हमारी घर की फूट से बाहर के आकर लाभ उठा ले जाते हैं हमें इसका तनिक भी ज्ञान नहीं होता। लोग हमें आँखें दिखाते हैं और हम दब जाते हैं तो फिर वे हमें क्यों न दबाएँगे, जब हमने दबना सहन कर लिया है। सिंह मारने के दिन गये। अब कोई अपना मन नहीं मार सकता केवल पराई इज्जत को मारते हैं या उन्हें आँख मारना ही आता है। इसी प्रकार हम किसी दीन की रक्षा करने में आँख बचा लेते हैं, अपनों को दुखी देख कर हमारे मन पर भूल कर भी चोट नहीं आती और जाति को डूबते देख कर भी हमारी आँखें नहीं डबडबा पातीं।

देश का दुख न देखने वाले,
देख पार कहीं न तुम जैसे,
आँख ऊँची न कर सके जब तो ।
आँख ऊँची भला रहे कैसे ॥

अर्थ—देश के दुःख को न देखने वाले तुम्हारे जैसे कभी कुछ देख ही नहीं पाए । अर्थात् जो देश का दुःख नहीं देखते वे वास्तव में दुनिया का कुछ भी नहीं देखते । जब अपने देश की सेवा द्वारा वे लोग अपनी आँखें ऊँची नहीं कर पाए तो उनकी आँख भला ऊँची कैसे रह सकती है ? देश की रक्षा, सेवा और भलाई करने में सर्वस्व का त्याग करने वाले लोग ही ऊँचे हो सकते हैं । जब वे ऐसा नहीं कर पाये तो वे ऊँचे कैसे कहे जा सकते हैं ?

वे बिचारी फूल जैसी लड़कियाँ,
जो नहीं बलिदान होते भी अड़ीं,
आँख वाले हम तुम्हें कैसे कहें ।
जब नहीं आँखें अभी उन पर पड़ीं ॥

अर्थ—वे फूल जैसी बेचारी लड़कियाँ जो आपत्ति के समय या देश की रक्षा के समय बलिदान होने से नहीं अड़ीं थीं अर्थात् किसी भी शर्त पर उन्होंने बलि-दान से मुक्त होना नहीं माना था, आज जब आपकी आँखें उनके उन बलिदानों पर नहीं पड़ीं हैं तो हम तुम्हें आँखों वाले कैसे कह सकें । जब आपने उनके बलिदानों पर ध्यान न देकर उनका स्मरण मात्र भी नहीं किया तो कौन तुम्हें विचारवान् कहेगा ?

जब कि कस ली पत गँवाने पर कमर,
पत उतरने में रहा तब कौन डर ।
ब परदा क्यों न हों परदे वालियाँ,
पड़ गया परदा तुम्हारी आँख पर ॥

अर्थ—जब लाज गँवाने पर कमर कस ली है तो लाज जाने में अब कौन सा डर रहा है । परदे वालियाँ (अर्थात् कुलीन स्त्रियाँ) अगर बेपरद

क्यों न हों जब तुम्हारी आँख पर ही परदा पड़ गया है। कुलीन स्त्रियों को सामने बेपरद होते देख कर तुम आँख बचा लेते हो तो तुम्हारी आँखों में परदा ही पड़ा हुआ है।

हम कहें कैसे कि आँखें हैं खुलीं,
सामने जब साँसती वे हो रहीं।
निज बुरी गत देख कर नहिं देखते।
आँख का है बन्द कर लेना यही॥

अर्थ—हम कैसे कहें कि तुम्हारी आँख खुली हुई है, जब वे अबलायें तुम्हारे सामने ही दुःख की साँस भर रही हैं और तुम चुप हो कर देख रहे हो। अपनी बुरी अवस्था देख कर भी उसे अनदेखा कर लेने का नाम ही आँख बन्द कर लेना होता है। आँख का वास्तविक रूप से खोल रखना तभी सफल होता है जब मनुष्य सामने होते हुए अन्यायों और अत्याचारों का प्रतिकार करे।

है कचूम धर्म का नित कट रहा।
है भली करनी कलपती दुःख भरी॥
जो गई हैं बाहरी आँखें बिगड़।
तो गई क्यों फूट आँखें भीतरी॥

अर्थ—सदा धर्म का नाश हो रहा है। अच्छी करनियां अर्थात् अच्छे काम दुःखी हो कर कलप रहे हैं (पछता रहे हैं)। जब बाहर की आँखें ही बिगड़ गई हैं तो भीतर की आँखें (ज्ञान) भी क्यों नहीं फूट गयीं। हम प्रत्यक्ष रूप से प्रति दिन धर्म पर होते हुए प्रहारों को देखकर भी चुप-चाप बैठे रहते हैं। इस कारण हमारी बाहरी आँखें एक तरह से फूट ही गई हैं जब कि हम इन कुकर्मों का बदला नहीं ले सकते तो हमारी भीतरी आँखें (ज्ञान) भी क्यों नहीं फूटी हुई समझनी चाहियें।

लड़ पड़े पोत के लिये सगे वे।
दूसरे लूट के चले मोती॥
एक क्या लाख बार देखें भी।
आँख हमें दुखती नहीं होती॥

अर्थ—सगे बन्धु अपने पोत--जहाज अर्थात् निजी जायदाद के लिये जब लड़ पड़ते है तो दूसरे लोग मोती (जहाज में लदे हुए) लूट लेने का लाभ उठा कर चले जाते हैं। हम एक बार क्या लाख बार भी देखें पर हमें इस भूल का ज्ञान नहीं होता। हम आपस में लड़ कर दूसरे को लूट-मार करने का समय देते हैं परन्तु आँख रखते हुए भी हमारे द्वारा इस भूल को नहीं देखा जाता।

जब कि दबते गए दबाने से।
लोग कैसे न तब दबावेंगे ॥
जब कि हम आँख देख लेवेंगे।
लोग आँखें न क्यों दिखावेंगे ॥

अर्थ—जब हम दूसरों के दबाने से दबते ही चले गए तो लोग हमें बार-बार क्यों नहीं दबावेंगे। जब हमने दूसरे की आँखें हमारी ओर तनी हुई सहन कर लीं तो वे लोग हमें आँखें क्यों नहीं दिखावेंगे। जब कोई हमारी ओर क्रोध-भरी आँखों से देखने लगता है तो हम उसका उसी रूप में उत्तर न देकर शान्त रह जाते हैं। यह देख कर वे लोग हमारी शान्ति का गलत लाभ उठा कर हमें और घुरने लगते हैं। भला वे ऐसा क्यों न करें जब हम उनके इस व्यवहार को शान्ति से सहन कर लेते हैं।

दिन गए सिंह मार लेने के।
है भला कौन मार मन पाता ॥
मारते हैं जमा पराई अब।
है हमें आँख मारना आता ॥

अर्थ—शेर मारने के दिन चले गये हैं। भला मन को कौन मार सकता है (मन अति चंचल होने के कारण मर नहीं सकता)। अब तो पराई इज्जत को ही लोग मारते हैं (मन को न मार कर उसके स्थान पर पराई इज्जत को मारते हैं)। इस भाँति हमें आँख मारना अर्थात् भले कार्यों से आँख चुराना ही आता है।

मिट चले हैं एक दिन मिट जायँगे ।
सहेंगे फूटी न आँजी सहेंगे ॥
क्या बचाएँगे किसी बेदीन को ।
हम सदा आँखें बचाते रहेंगे ॥

अर्थ—हम मिटते जा रहे हैं और एक दिन मिट जायेंगे। किसी बेदीन क क्या बचायेंगे जब हम आँखें ही बचाते आ रहे हैं। दीनों की रक्षा पर हमो आँख चुरा कर रह जाते हैं तो उन्हें क्या बचायेंगे।

बिदकते देख-देख अपनों को ।
चोट जी ने न भूल कर खाई ॥
डूबता देख जाति का बेड़ा ।
कब कभी आँख डब-डबा आई ॥

अर्थ—अपनों को तड़फड़ाते देख कर हमारी आत्मा ने भूल कर भी कभी चोट नहीं खाई अर्थात् अपनों को दुःख से कराहते देख कर कभी हमें उन पर तर्स नहीं आया। इसी प्रकार अपनी जाति का बेड़ा डूबते हुए देख कर भी हमारी आँखें नहीं उबडबातीं।

शब्दार्थ—सांसती=दुःखभरी सांस लेती हुई, पत=इज्ज़त।

सांसती

आदर्श

[मैथिलीशरण गुप्त]

संकेत—ये पद्य भाग मैथिलीशरण गुप्त की "भारत भारती" से लिए गये हैं। इनमें कवि ने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के मुख्य-मुख्य आदर्श (Ideals) उपस्थित किये हैं जिनमें उस युग के महान् व्यक्तियों और महा-महिलाओं के उज्ज्वल चरित्र दिखला कर प्राचीन भारतीय संस्कृति के सुन्दर आदर्शों की ओर संकेत किया गया है।

अर्थ—जितने आदर्श-जन (Ideal men) तथा सत्कर्म करने वाले आर्य लोग इस भारत भूमि पर हुए हैं इतने और कहीं नहीं हुए। यद्यपि आज हमारे उन पुराने आदर्शों के रहे-सहे गीत मात्र ही रह गए हैं पर इस सम्बन्ध में कहे गए दूसरों के वचन भी हमारे साक्षी बन रहे हैं। गौतम, वसिष्ठ जैसे ज्ञान देने वाले यहाँ ऋषि हुए हैं और मनु, याज्ञवल्क्य जैसे कार्य-कुशल मुनीषी भी इसी भारत भूमि पर उतरे थे। वाल्मीकि, वेदव्यास जैसे गुणों का गान करने वाले अर्थात् कवि तथा लेखक यहीं पर हुए थे। इसी प्रकार पृथु, पुरु, भरत और रघु जैसे बेजोड़ सम्राट् यहाँ हुए थे। लक्ष्मी (धन-दौलत) ही नहीं चाहे सर्वस्व चला जाये पर वे लोग सचाई कभी नहीं छोड़ते थे, भले ही अन्धे हो जाएँ पर सत्य से नाता नहीं तोड़ते थे, अपने पुत्र की मृत्यु स्वीकार करके भी वचन की रक्षा करते थे। कौन ऐसा व्यक्ति है जो हमारे पूर्वजों (Fore-fathers) के गुणों की सीमा कहे। जो सर्वस्व देकर चालीस दिनों तक भूखे रहे फिर भी अपने अतिथि-सत्कार में (महिमानों की खातिरदारी में) रूखे नहीं बने और राजा रन्तिदेव ने दूसरों को तृप्ति देकर अपनी तृप्ति समझी थी ऐसे अतिथि-सत्कार के धनी महापुरुष भारत के सिवा और किसी देश ने पैदा नहीं किए।

राजा शिवि ने श्येन (बाज़) को बचाने के लिए अपना माँस दे दिया। सचाई की रक्षा के लिए राजा हरिश्चन्द्र ने चण्डाल के हाथों अपने को बेच डाला। इसी प्रकार दूसरों की भलाई को देखकर ऋषि दधीचि ने अपनी हड्डियों का दान कर दिया था। ऐसे शिवि, हरिश्चन्द्र और दधीचि जैसे दानी यहाँ (भारत में) पैदा होते रहे।

पुरु जैसे सत्पुत्र (अच्छे पुत्र) थे, जिन्होंने पिता के लिए सब कुछ सहन किया। भरत जैसे भाई थे, जिन्होंने राज्य भी छोड़ दिया (राम के बन जाने पर भरत को अयोध्या का राजतिलक मिला परन्तु उन्होंने उसे इसलिए ठुकरा दिया कि बड़े भाई राम के रहने पर वह छोटा भाई राज्य का अधिकारी नहीं हो सकता)। धीरज तथा वीरता के ऊँचे पालक प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु जैसे बालक भी यहीं हुए थे। वह भीष्म जिनमें इन्द्रिय-दमन (The quality of self-controlling), पृथ्वी जैसी (अचल) धीरता, शील, वीरता, गम्भीरता (Seriousness), सरलता (भोलापन) तथा विशाल ज्ञान आदि सब गुण थे। उन सबके अनुकरण (नकल—पदचिन्हों पर चलना) में ही सब गुण वर्तमान थे। यहाँ भारत में सुन्दर वीरता में ही सरसता (मधुरता) वास किया करती थी। किन्तु यहाँ का वह आत्म-संयम (Self-control) और कहाँ मिल सकेगा। जिसके आगे उर्वशी जैसी सुन्दर स्त्री (उर्वशी—स्वर्ग की परी) आकर रति की माँग करे (भोग भोगने के लिए निमन्त्रण दे) और वह उसे यों कहे—"हे कामिनी ऐसी बात मुझ से न कह।" ऐसे आत्म-संयमी पुरुष भारत को छोड़कर और कहाँ मिल पाएँगे ?

यदि कोई भूलकर अपराध कर देता था तो उसका ज्ञान होने पर वह दण्ड प्राप्त करने के लिए स्वयं राजा के पास जाता था। ऐसे-ऐसे ऋषियों के उदाहरण इतिहास में और हमारे पास भी लिखे पड़े हैं।

शब्दार्थ—सत्कार्य = अच्छे काम, साक्षी = गवाही, विधि विधायक = रचना करने वाले काम-काज आदि में चतुर या अच्छे-बुरे कार्य का निर्णय करके दिखलाने वाले, लोक नायक = जनता के अग्रसर, आमिष = माँस, श्येन-भक्षण = श्येन पक्षी का खाना, परमार्थ हित = दूसरों की भलाई के लिए, स्मरणीय =

पिता के लिये, प्रौढ़तम=बड़े भारी, विवेकता=ज्ञान, अनुकरण=नकल, सरसता=मिठास—स्वादिष्टता, भामिनी=स्त्री, अनुचित=बुरा, दण्डार्थ=दण्ड के लिये, अनुपम=बेजोड़, सुजनता=सज्जनता, अमल=साफ, आभास=प्रकाश।

———

आर्य स्त्री

संकेत—प्रस्तुत पद्य भाग गुप्त जी की "भारत भारती" से लिये गए हैं। इन में कवि ने भारत की प्राचीन सती-साध्वी नारियों का उज्ज्वल गौरव प्रकट किया है कि किस प्रकार सावित्री, सुकन्या और अंशुमती ने अपने कर्त्तव्य-पालन के लिए अपने सुखों का त्याग किया। इसी प्रकार विदुला, सुमित्रा और कुन्ती के त्याग और तपस्याओं का जिक्र करते हुए कवि ने भारतीय नारी का सच्चा चित्र उतारा है।

अर्थ—इस भारतभूमि में केवल पुरुष ही ऐसे न थे, जिन पर संसार को गर्व था बल्कि हमारी घर की देवियाँ भी वास्तव में देवियाँ ही थीं। अत्रि-अनुसूया के समान गृहस्थी जीवन स्वर्ग में भी नहीं मिल सकता था। दाम्पत्य (गृहस्थी) में वह सुख था जो मुक्ति में भी नहीं मिल सकता। अगर वे देवियाँ स्वामियों (पतियों) के काम में पूरा भाग न लेतीं और उसमें प्रेम पूर्वक सहयोग न देतीं तो वे सु-कुमारियाँ "अर्द्धांगिनी" कैसे कहला सकतीं? तात्पर्य (मक्सद) यह है कि उस समय स्त्रियाँ पतियों के कार्यों में पूर्ण सहायता देती थीं। अब कवि कुछ ऐतिहासिक महिलाओं के लिए कहता है—विदुला ने हारे हुए

मनोहत पुत्र को फिर बल दिया था, सुमित्रा (लक्ष्मण की माता) ने नव-वधु (नई बहू) के रहते हुए भी पुत्र के वियोग को स्वीकार किया था (लक्ष्मण के बन जाने को स्वीकार किया)। इसी प्रकार कुन्ती ने ब्राह्मण के लड़के की रक्षा के लिए अपने लड़के के मरने को कुछ नहीं समझा था। ऐसी विदुला, सुमित्रा और कुन्ती के समान भारत में माताएँ हो गई हैं। सावित्री छोटी आयु का पति पाकर भी नहीं बदली जिसको एक बार वर लिया उसी को अपना जीवन सर्वस्व समझा, सुकन्या ने भूल से मुनि को सताकर उसका प्रतिफल (प्रतिकार—बदला) दिया और अंशुमती ने रोगियों की सेवा से जीवन में आराम नहीं पाया। इस प्रकार सावित्री, सुकन्या और अंशुमती इसी भारतभूमि पर धन्य हो गई। गान्धारी (दुर्योधन की माता) ने अन्धे पति धृतराष्ट्र को पाकर अपनी आँखें जीवन-भर मूँद लीं (आँखों पर पट्टी बाँध ली) और दमयन्ती भी अपने पति नल के साथ बन-बन में मारी-मारी फिरी। इस प्रकार यहाँ की नारियों ने अपने धर्मों का पालन किया था तो फिर इसमें क्या आश्चर्य कि ऐसी नारियों को ईश्वर द्वारा दैवी बल प्राप्त हुआ था। अबलाओं का वह आत्म-बल (Will power) सारे संसार में नया था। उन्होंने और अधिक नया चाहा यहाँ तक कि सूर्योदय को भी रोक लिया। जिस क्रोधी मुनि की नज़र पड़ने से पक्षी जलकर ज़मीन पर गिर पड़ा था, वह मुनि भी सती के तेज़ के आगे निस्तेज हो गया।

शब्दार्थ—सौख्य=सुख, अपवर्ग=मुक्ति, समभाग=बराबर हिस्सा, अनुरागपूर्वक=प्रेम पूर्वक, अल्पायु=छोटी आयु, प्रतिफल=बदला, विराम=आराम, आमरण=मरने तक—जीवन भर, अबला=स्त्री, क्षुब्ध=क्रोधी—दुःखी, विहग=पक्षी, भू=ज़मीन, निष्प्रभ=निस्तेज—तेजहीन।

एक कहानी

संकेत—ये पद्य भाग गुप्त जी की "यशोधरा" से लिये गए हैं। इन में कवि ने राहुल बालक की कहानी के रूप में भगवान् बुद्ध की करुणा (दया)

का सजीव चित्रण किया है। बुद्ध का बालक राहुल माँ से कहता है—माँ मुझे कोई कहानी सुना, माँ ने उसके पिता के जीवन में घटी हुई एक छोटी सी घटना सुना दी, जिस में एक बार सिद्धार्थ (बुद्ध) ने शिकारी द्वारा बिंधे गए हंस की रक्षा उससे की थी। शिकारी और बुद्ध दोनों का झगड़ा हो गया जो न्यायालय तक पहुँचा।

भाव—राहुल कहने लगा—माँ कोई कहानी सुना क्योंकि यह नौकरानी कह रही है कि तू मेरी नानी की बेटी है इसलिये सुना—राजा था या रानी? यह सुनकर माँ (यशोधरा) कहने लगी—बेटा, तू हठी है। अच्छा, ले सुन—एक बार बहुत सवेरे तेरे पिता उपवन में घूम रहे थे। वहाँ अधिक सुगन्ध फैल रही थी, पानी झलमल करता हुआ लहरा रहा था और पक्षी कल-कूजन कर रहे थे। इतने में एकदम एक हंस शिकारी के बाण से घायल होकर नीचे गिरा। तेरे पिता ने उसे उठा लिया। इतने में शिकारी आकर उनसे हंस माँगने लगा। तेरे पिता ने नहीं दिया। इस पर दोनों का झगड़ा छिड़ा। बात न्यायालय तक पहुँची। अब हे राहुल, तू ही बता कि न्याय किसका पक्ष (Side) लेता है (यशोधरा ने राहुल से पूछा)? राहुल ने कहा—माँ मेरा इस में क्या, मैं तो कहानी सुन रहा हूँ। फिर यशोधरा कहने लगी—अगर कोई निरपराध को मारे तो दूसरा उसकी रक्षा क्यों न करे, और रक्षक का पक्ष क्यों न ले क्योंकि न्याय दया को देता है। "हाँ माँ! सचमुच न्याय दया का दानी होता है", राहुल ने कहा। "तब तो तुमने कहानी को अच्छी प्रकार समझा है", यशोधरा ने कहा।

"माँ कह एक कहानी।"
"बेटा, समझ लिया क्या तूने मुझको अपनी नानी ?"
"कहती है मुझ से यह चेरी,
तू मेरी नानी की बेटी !
कह माँ, कह, लेटी ही लेटी,
राजा था या रानी ?
राजा था या रानी ?

माँ कह एक कहानी।

अर्थ—माँ एक कहानी कह।" हे बेटा क्या तूने मुझे अपनी नानी समझ लिया ?" यशोधरा ने कहा।

मुझ से दासी कहती है कि तू मेरी नानी की बेटी है इसलिए हे माँ लेटी-लेटी एक कहानी मुझे कहदे। वह राजा था या रानी ? इस प्रकार की कोई कहानी कह दे माँ—राहुल ने कहा।

"तू है हठी मान धन मेरे,
सुन, उपवन में बड़े सवेरे
घूम रहे थे, पितृ पद तेरे,
जहाँ सुरभि मन मानी।"
"जहाँ सुरभि मन मानी ?
हाँ माँ यही कहानी।"

अर्थ—यशोधरा कहने लगी—हे मेरे मानव धन, तू हठी है। अच्छा ले सुन—एक बार तेरे पिता बड़े सवेरे उपवन में घूम रहे थे जहाँ, खूब सुगन्धि उड़ रही थी—"जहाँ खूब सुगन्धि उड़ रही थी ?" हाँ, माँ यही है कहानी—राहुल ने कहा।

"वर्ण-वर्ण के फूल खिले थे,
झलमल कर हिमबिन्दु झिले थे,
हलके झोंके हिले-मिले थे,
लहराता था पानी।"
"लहराता था पानी !
हाँहाँ यही कहनी।"

अर्थ—यशोधरा कहानी सुनाती हुई कह रही है कि उस उपवन में अनेक भाँति के फूल खिले हुए थे। बर्फ के बिन्दु झलमल करते हुए झलक रहे थे। वायु के हलके झोंके एक दूसरे से हिल-मिल कर बह रहे थे। और उन झोंकों के द्वारा पानी में लहरें उठ रही थीं। पानी में लहरें उठ रही थीं ?" हाँ, हाँ यही है कहानी।

"गाते थे खग कल-कल स्वर से,
सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा विद्ध होकर सर शर से,
हुई पक्ष की हानि।"
"हुई पक्ष की हानि !
करुणा भरी कहानी।"

अर्थ—उस उपवन में (जहाँ तेरे पिता घूम रहे थे) पक्षी कल-कल स्वर में गा रहे थे। अचानक एक हंस बाण से घायल होकर ऊपर से गिरा। उसके पंख भी उतर गए थे। "क्या पंख भी उतर गए थे? तब तो कहानी बड़ी करुण भरी (Tragic) है।" राहुल ने कहा।

"चौंक उन्होंने उसे उठाया,
नया जन्म-सा उसने पाया,
इतने में आखेटक आया,
लक्ष्य-सिद्धि का मानी !"
"लक्ष्य सिद्धि का मानी ?
कोमल कठिन कहानी।"

अर्थ—उन्होंने (तेरे पिता ने) उस हंस को चौंक कर उठा लिया। उस हंस ने अब एक नया जन्म पाया था। इतने में शिकारी भी आ गया, जो निशाने बाजी का घमण्ड लिए हुए था। "निशाने बाजी का घमण्डी था वह ?" "कहानी तो कोमल तथा कठिन है।" राहुल ने कहा।

"माँगा उसने आहत पक्षी,
तेरे तात किन्तु थे रक्षी,
तब उसने जो था खग-भक्षी,
हठ करने की ठानी।"
"हठ करने की ठानी !
अब बढ़ चली कहानी।"

अर्थ—उस शिकारी ने मरे हुए पक्षी को तेरे पिता से माँगा। किन्तु तेरे

पिता उसके रक्षक बने थे (वे उस पक्षी को शिकारी के हाथ क्यों देते ?) तब शिकारी ने हठ (जबर्दस्ती) करने की सोच ली। "जबर्दस्ती करने की सोच ली ?" अब तो कहानी बढ़ चली।

"हुआ विवाद सदय निर्दय में,
उभय आग्रही थे स्व विषय में,
गई बात तब न्यायालय में,
सुनी सभी ने जानी।"
"सुनी सभी ने जानी ?
व्यापक हुई कहानी।"

अर्थ—दयालु और निर्दय दोनों में विवाद छिड़ पड़ा। दोनों अपने-अपने विषय में (अपनी-अपनी बात पूरी करने में) हठी बन रहे थे। अब बात अदालत तक पहुँची, जिसे सबने सुना और जाना। "सबने सुना और जाना ? अब तो बात बड़ी फैल गई।" राहुल ने कहा।

"राहुल तू निर्णय कर इसका—
न्याय पक्ष लेता है किसका ?
कहदे निर्भय जय हो किसकी,
सुन लूँ तेरी बानी ?"
"माँ मेरी क्या बानी ?
मैं सुन रहा कहानी।"

अर्थ—हे राहुल तू ही निर्णय कर कि न्याय (इन्साफ) किसका पक्ष लेता है। निडर होकर कह दे कि इस सम्बन्ध में किस की जीत होनी चाहिये। जरा तेरी वाणी भी सुन लूँ। "तेरी वानी भी सुन लूँ ? मैं तो कहानी सुन रहा हूँ माँ ?" राहुल ने कहा।

"कोई निरपराध को मारे,
तो क्यों अन्य उसे न उबारे,
रक्षक पर भक्षक को वारे,

न्याय दया का दानी।"
"न्याय दया का दानी ?
तूने गुनी कहानी।"

अर्थ—राहुल कहने लगा—अगर कोई निरपराध को मारता है तो दूसरा उसे क्यों न बचाये और भक्षक के स्थान पर रक्षक को क्यों न कायम करे अर्थात् भक्षक को झूठा कर रक्षक को सच्चा ठहराये। क्योंकि इन्साफ दया का दानी है अर्थात् इन्साफ ही निरपराधियों और कमजोरों पर दया दिखलाता है। "इन्साफ दया का दानी है ?" तब तो तुमने कहानी को खूब समझा है। यशोधरा ने कहा।

शब्दार्थ—चेरी=दासी, हठी=हठ करने वाला, उपवन=घर के आँगन में लगाया हुआ बाग, सुरभि=सुरभि=सुगन्धि, हिम-बिन्दु=बर्फ के कतरे, लहराता=लहरें लेता—उछलता, खग=पक्षी, सहसा=एकदम, विद्ध=बींधा हुआ—बाण से घायल किया हुआ, पक्ष=पंख, करुण=दया, आखेटक=शिकारी, लक्ष्य सिद्धि=निशाने बाजी में सफलता, मानी=अभिमानी, आहत=मरा हुआ, रक्षी=रक्षा करने वाला, खग-भक्षी=पक्षियों को खाने वाला, विवाद=झगड़ा, सदय=दयावान्, उभय=दोनों, आग्रही=हठी, स्व-विषय=अपना मामला—अपनी बात, न्यायालय=अदालत, व्यापक=फैली हुई, निर्णय=इन्साफ, बानी=बोली—बात, उबारे=रक्षा करे, गुनी=समझी।

———

Bharat Bhushan Jyotshi

देश-सेवा

[रामनरेश त्रिपाठी]

संकेत—ये पद्य भाग त्रिपाठी जी की रचना "स्वप्न" से लिए गये हैं। इसमें कवि ने भारत के अति प्राचीन स्वतन्त्रता के जमाने का वातावरण चित्रित करते हुए उस समय के वीरों तथा नवयुवकों की बहादुरी और देश-सेवा की भावनाओं का वर्णन किया है—किस प्रकार वे हमारे देश के हमलावरों के साथ डटकर युद्ध करते थे और किस प्रकार उन्हें इस अवस्था में पड़े हुए माताओं, बहिनों, और बहुओं की पूर्ण सहायता मिलती थी। वे लोग परतन्त्र जीवन को जानते ही न थे। स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सदा कटिबद्ध रहते थे। इसी कारण उस स्वतन्त्र भारत में सब जन सुख और उत्सवों का जीवन बिताते थे।

भाव—एक समय था जब यहाँ के लोग अपने देश को चहुँ ओर सुरक्षित जानकर सुख और स्वतन्त्रता से रहते थे। वे काव्यों का अमृत रस पीते थे, नीरोग और निर्विघ्न रहते थे और घर-घर में आनन्द के उत्सव मनाये जाते थे। यह सुख देखकर ईर्ष्या से जलकर एक शत्रु ने इस देश पर चढ़ाई कर दी। यहाँ के राजा ने बड़ी सेना साथ लेकर उसका सामना किया परन्तु शत्रु की बड़ी भारी सेना के आगे उसे हार खानी पड़ी। शत्रु ने यह अच्छा अवसर पाकर गांव, नगर और धान्यागारों (Ration stores) पर अधिकार कर लिया। इधर हमारे पराजित राजा ने अपने आदमी देश के कोने-कोने में भेजकर यह सूचना पहुँचा दी कि अब देश की रक्षार्थ सभी तैयार हो जाएँ। अपने देश, मान, धन और जन की रक्षार्थ सारी प्रजा तैयार हो जाय।

इस प्रकार के हमारे महाराज उस समय नीति और धर्म के रक्षक तथा विश्व-विजयी (World conquerors), पुरुषों के वंशज होते थे। उनके

चरणों की धूलि लेकर संसार के राजे अपने को धन्य मानते थे। वे सच्चा वीरता, विश्वास आदि के रक्षक होते थे। संसार में परतन्त्र होकर जीवि रहना वे नहीं जानते थे। न्याय और स्वतन्त्रता ये दो उनके धन हुआ कर थे। राजा की घोषणा (Declaration) पाकर प्रजा ने शत्रु को उचि दण्ड देने के लिए अपनी प्रबल शक्ति का उपयोग किया और अन्त में सफ हुई। दृढ़ विश्वास, मुख का प्रचण्ड तेज, पहाड़ को चूर कर देने की चंचल और शत्रु को कुचल देने के लिए जोर से गर्जती हुई युवकों की टोलियाँ च पड़ीं। गाँवों और मार्गों में सब जगह उत्साह की लहर उमड़ पड़ी। उन वी के लिए माताएँ भोजन लेकर रास्तों में खड़ी रहती थीं। और उन सैनि युवकों को प्रेम से खिलाते-पिलाने में परम सुख पाती थीं।

बहिनें कहती थीं— हे भाई, शत्रु का घमण्ड चूर करके एक विजयी सैनि बनकर इसी मार्ग से होते हुए जाना। हम उस समय लाजा फेंकती हुई खु के गीत गायेंगी, इस भाँति हमें ज़रूर आनन्दित करना। बहुएँ भी भूख-प्यास भूल कर अपने सैनिक पतियों को देश की रक्षार्थ सज-धज कर संग्राम को जा हुए रोशनदानों के मार्गों से आशा-भरी दृष्टियों से देखती रहती थीं। वे इ भावना से भर कर कि हमारे प्राणेश्वर जीत कर जब आएँगे, तो हम उ मालाएँ पहिराएँगी, नित्य प्रात: उद्यानों से फूल तोड़ लाती और मालाएँ गू कर रख लेतीं। उस समय उनकी आँखों से प्रेम के आँसू बहने लगते थे।

एक समय स्वाधीन देश को,
समझ शत्रु-भय-रहित सुरक्षित,
लोग स्वर्ग सुख भोग रहे थे,
शान्ति सहित, निर्विघ्न, अशंकित।
सुधा-मधुर रसमय काव्यों को,
पढ़, सुन, समझ और अनुभव कर।
अभिनय कर विनोद-विनिमय कर,
आनन्दित थे सब नारी-नर।

अर्थ—एक समय लोग अपने स्वतंत्र देश को शत्रुओं के डर से दूर त भली प्रकार रक्षित जान कर स्वर्ग जैसा सुख भोग रहे थे। उन लोगों ने शा

थी और जीवन में कोई विघ्न-बाधा न थी। यही कारण था कि यहाँ के सब नर-नारी काव्यों को पढ़, सुन, समझ कर तथा अनुभव (Experience) कर अमृत जैसा मीठा रस पीते थे। वे लोग नाटक, राग-रंग आदि नाना प्रकार के आनन्द के साधनों से जीवन को आनन्दित किया करते थे। अर्थात् अमन-अमान के उस स्वतन्त्रता के जमाने में लोग निडर होकर ललित कलाओं (Fine arts) द्वारा जीवन का आनन्द मनाते थे। इसके अतिरिक्त सब प्रकार सुख साधनों का भोग करते थे।

पारस्परिक सहानुभूतिमय,
सकल मनुज नीरुज निरुपद्रव।
हाट-बाट घर-घर में प्रतिदिन,
करते थे संगीत महोत्सव।
युवक युवतियों के कलोल से,
गूँजा रहता था घर उपवन।
नित्य नवल कामना, निरत थे,
विविध विलास-युक्त उनके मन।

अर्थ—दूकानों पर रास्तों में सर्वत्र लोग आपस में हमदर्दी रख कर, दुःख-दर्द तथा विघ्न-बाधाओं से दूर होकर हर-रोज गाना-बजाना तथा उत्सव मानाया करते थे। इस समय युवक (Young) और युवतियों के कलोलों (प्रेम के खेल) से घर तथा उपवन गूँजते रहते थे। उनके मन सदा बहुत प्रकार के विलासों (शृंगार पूर्ण चेष्टाओं) से भरे रहते थे और नित नयी कामनाओं (इच्छाओं) से युक्त रहते थे, स्वतन्त्र और सुरक्षित देश में रह कर भारतीय जनता उन दिनों निडर होकर शान्ति से जीवन के जशन मनाया करती थी तथा इसके साथ साहित्य (Literature), संगीत, (Music) आदि ललित कलाओं द्वारा जीवन का आनन्द उठाती थी।

यह सुख देख द्वेष-वश अथवा
धन-लिप्सा वश बल-संचय कर,
एक शत्रु चतुरंग चमू ले
आया भारत सीमा पर।

देशाधिप ने तुमुल युद्ध कर,
रोका बहु संख्यक ले सैनिक।
पर अरि की दुर्जय अनी से,
हार गया नृप नहीं सका टिक।

अर्थ—हमारे देश का यह सुख देखकर शत्रु द्वेष वश अथवा धन के लालच में आकर चतुरंग (चार अँगों वाली सेना—हाथी, घोड़े, रथ, पैदल और सवार) सेना लेकर अचानक हमारे देश की सीमा (हद) पर आ पहुँचा। यहाँ के सम्राट् ने बड़ी भारी सेना साथ लेकर भयंकर युद्ध से उसे रोका परन्तु शत्रु की सेना दुर्जेय (न जीती जाने वाली) होने के कारण हमारा सम्राट् उसके आगे टिक नहीं सका और हार गया।

विद्युत-वेग-वन्त बैरी ने
पाकर बाधा-रहित सुअवसर,
कितने ही पुर नगर ग्राम घर,
धान्यागार लिये अधिकृत कर।
पहुँचा दी सत्वर स्वदेश में,
यह घोषणा नृपति ने घर-घर।
अपने देश, मान, धन, जन की,
रक्षा करे प्रजा सब मिल कर।

अर्थ—बिजली के समान वेग वाले शत्रु ने ऐसे अच्छे अवसर को पाकर जिसमें उसके लिये कोई अड़चन न थी, कितने ही नगर, गाँव, घर और राशन के भण्डारों पर अधिकार कर लिया।

हमारे सम्राट् ने भी जल्दी ही यह घोषणा घर-घर चहुँचा दी—सब प्रजा अदने देश, मान, धन और जन (जनता) की मिल कर रक्षा करे।

वे थे नीति-धर्म के रक्षक
जगज्जयी पुरुषों के वंशज,
पृथ्वी-भर के नृप होते थे,
धन्य प्रणत कर जिनकी पद-रज।

सत्य, शौर्य, विश्वास, न्याय के
एक मात्र आधार धरा पर,
व ही थे, उनका जीवन था
जग के निविड़ विपिन में दिनकर ।

अर्थ—वे हमारे प्राचीन राजे या सम्राट् धर्म और नीति के रक्षक तथा संसार जीतने वाले पुरुषों की संतान होते थे, जिनके चरणों की धूलि पाकर संसार के राजे अपने को धन्य मानते थे ।

वे इस धरती पर सत्य, वीरता, विश्वास और न्याय के एक मात्र (पूर्ण-रूप से) आश्रय थे। संसार रूपी घने जंगल में वे सूर्य की भाँति प्रकाश दे रहे थे ।

वे न जानते थे भूतल पर
जीवित रहना पराधीन बन,
न्याय और स्वातन्त्र्य जगत में
उनके थे दो ही जीवन धन ।
सुन नृप की घोषणा शत्रु की
प्रबल शक्ति का पाकर परिचय ।
किया उन्होंने शीघ्र शत्रु को
उचित दण्ड देने का निश्चय ।

अर्थ—वे राजा लोग इस संसार में परतन्त्र होकर जीवित रहना नहीं जानते थे । उनके जीवन के दो ही धन थे एक—न्याय (Justice) और दूसरा स्वतन्त्रता (Independence) ।

अब राजा की उस घोषणा (Declaration) को सुनकर तथा शत्रु की बड़ी ताकत का परिचय पाकर उन्होंने शत्रु को जल्दी ही उचित दण्ड देने का निश्चय कर लिया ।

जय से दृढ़ विश्वास युक्त थे
दीप्तमान जिनके मुखमण्डल,
पर्वत को भी खण्ड-खण्ड कर
रज कण कर देने को चंचल ।

कड़क रहे थे अति प्रचण्ड भुज
दण्ड शत्रु मर्दन को विह्वल,
ग्राम-ग्राम से निकल-निकल कर
ऐसे युवक चले दल के दल ।

अर्थ—ऐसे युवक हर एक गाँव से निकल कर चल पड़े जिनके मुख मगा रहे थे, जिन्हें जीत पाने का दृढ़ विश्वास था, जो पर्वत को भी टुकड़े कर देने में उतावले हो रहे थे और जिनकी प्रचण्ड भुजाएँ शत्रु कुचल देने के लिए व्याकुल हो रही थीं, ऐसे युवक थे वह जिन की वे प्र भुजाएँ बैरी का मान-मर्दन करने के लिए कड़क उठीं और इतनी प्रच उठीं कि मालूम होता था कि कभी बैरियों को कुचल देंगे ।

रहता था उत्साह प्रवाहित
गाँवों में राहों पर दिन-भर,
घर से निकल खड़ी रहती थीं
माताऐं भोजन-जल लेकर ।
सैनिक युवकों को रण वर्ती
निज पुत्रों के तुल्य मान कर,
खिला-पिला कर सुख पाती थीं
प्रेम सहित दृग् मूँदे ध्यान कर ।

अर्थ—गाँवों में तथा राहों पर दिन भर उत्साह प्रवाह लेता रहता अर्थात् देश के कोने-कोने में तथा जन-जन में उत्साह (हिम्मत) की दौड़ती रहती थीं । माताएँ भोजन तथा जल लेकर घर से बाहर निकल खड़ी रहती थीं । अर्थात् जो युवक सैनिक अपने देश को बचाने के लिए में जाते थे उनके लिए भोजन तथा जल लेकर माताएँ सदा बाहर खड़ी उनकी इन्तज़ार किया करती थीं । वे मातायें युवक सैनिकों को, जो र भाग ले रहे होते थे पुत्रों की भाँति मान कर और उन्हें खिला-पिला कर के साथ आँखें मूँद कर ध्यान में मग्न होकर सुख प्राप्त करती थीं ।

बहनें कहती थीं हे भाई !
बैरी का अभिमान चूर्ण कर,
विजय योद्धा के बानक में
इसी राह होकर जाना घर ।
हम गायेंगी गीत विजय के
फूल और लाजा बरसा कर,
बहनों को आनन्दित करना
हर्ष हमारा सुना-सुना कर ।

अर्थ—बहनें कहती थीं—हे भाई ! बैरी का अभिमान चूर करके अर्थात् उन्हें हरा कर एक विजयी सैनिक के रूप में इसी रास्ते से होकर जाना । उस समय विजय के गीत गायेंगी, तथा फूल और लाजा (फुलियाँ) बरसायेंगी । हमारी खुशी और बहनों को भी सुना-सुना कर उन्हें आनन्दित करना ।

बहुएँ भूख-प्यास बिसरा कर
पथ पर निर्निमेष दृग्-देकर,
देख सैनिकों के सज-धज निज
पतियों की छवि दृग में लेकर ।
पथ की ओर खोल वातायन,
बार-बार चुप-चाप आह भर,
किसी कल्पना में बेसुध-सी,
वहीं खड़ी रहती थीं दिन भर ।

अर्थ—बहुए भूख तथा प्यास भुला कर, एक टक रास्ते की ओर दृष्टि लगा कर, संग्राम के लिए सज-धज कर, जाते हुए अपने पतियों की ओर आँखें लगा कर, और जिस रास्ते में वे लोग जाते थे उसी ओर रोशनदान खोल कर किसी कल्पना (Imagination) में बेसुध सी हुई दिन भर वहीं खड़ी-खड़ी चुपचाप आहें भरती रहती थीं । अर्थात् रण की ओर जाते हुए पतियों को प्रेम, आशंका और पुनर्मिलन की आशा लेकर इन विचारों की तरंगों में दिन भर तैरती रहती थीं ।

युद्ध जीत कर वीर-वेष में
आएँगे मेरे प्राणेश्वर,
पहनाऊँगी यह जय-माला
इसी भावना को उर में धर।
प्रातःकाल नित्य उठ कर के
उपवन से नव कुसुम चयन कर,
हार गूँथ कर वे रखती थीं
प्रेम-वारि से पूर्ण नयन कर।

अर्थ—उन युवक वीरों की बहुएँ यह सोच कर कि उनके प्राणेश्वर (हृ के मालिक—पति) युद्ध जीत कर वीरता के वेष (शकल) में जब घर आएँगे वे उन्हें जयमालाएँ पहिनाएँगी; नित प्रातःकाल उठ कर उपवन (बाग) नए-नए फूल चुन लातीं और प्रेम के आँसुओं से आँखें भर कर हार गूँथ क रख लेतीं थीं।

शब्दार्थ—अशंकित=निडर, सुधा-मधुर=अमृत के समान मीठे, रस मय=रस वाले, अनुभव=तजुर्बा, अभिनय=नाटक करना (Acting पारस्परिक=आपस की, सहानुभूति=हमदर्दी (Sympathy), नीरुज= बेपीड़ (Painless), कलोल=प्रेम भरी खेल, नवल=नया, विविध= बहुत प्रकार के, धन लिप्सा वश=धन की इच्छा के कारण, औचक=अचानक तुमुल=भयंकर, (Terrible), विद्युत् वेग-वन्त=बिजली के वेग वाला धान्यागार=अनाज के गोदाम, सत्वर=झटपट, जगज्जयी=संसार को जीतने वाले, दीप्तिमान=जगमगाते हुए, रजकण=धूल के कतरे, मर्दन=कुचलना विह्वल=व्याकुल, रणवर्ती=संग्राम में गए हुए, बानक=शकल, निर्निमेष= एक टक, वातायन=रोशनदान, कल्पना=ख्वाब, चयन=चुनना।

मेरे नाविक

[जयशंकर प्रसाद]

संकेत—प्रस्तुत पद्य भाग श्री 'प्रसाद' की रचना 'लहर' से लिया गया है। इसमें कवि नाविक (मल्लाह—माँझी) से कहता है कि वह कवि को भुलावा देकर उसकी किश्ती धीरे-धीरे उस एकान्त दुनिया में ले जाये, जहाँ साँसारिक शोर-गुल न हों और निष्कपट प्रेम की कथा सुनने में मिले। उस निर्जन दुनिया में अलौकिक आशा की चमक हो, विभुता (Broad circle) साकार रूप में देखने को मिले और अमरता तथा जागृति का सवेरा एक गहरी ज्योति बिखेरता हो।

भाव—हे माँझी तू मुझे भुलावा देकर धीरे-धीरे उस दुनिया में ले जा जहाँ संसार का शोर-गुल छोड़कर सागर की लहर निष्कपट प्रेम की कहानी आकाश के कानों में कहती हो, जहाँ जीवन की शीतल छाया संध्या (सायं) के समान नीले नेत्रों के मार्ग से तारों की पंक्ति ढुलकाती हो (अर्थात् जिस दुनिया में दैवी प्रकाश मिले) जहाँ व्यापकता अपने साकार रूप में दीख पड़े, थकावट और आराम दोनों उत्सव पैदा करने वाले हों और अमरता तथा जागृति भरा सवेरा घना प्रकाश बरसाता हो ऐसी दुनिया में हे नाविक तू मुझे धीरे-धीरे ले चल।

ले चले मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।

जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी—
निश्चल प्रेम-कथा कहती हो।
तज कोलाहल की अवनी रे !

अर्थ—कवि अपने माँझी से कहता है—हे मेरे माँझी ! तू मुझे भुलावा देकर धीरे-धीरे उस दुनिया में ले चल जिस निर्जन (मनुष्यों के बिना) देश में सागर की लहर आकाश के कानों में निश्छल प्रेम की कथा कहती हो अर्थात् जिस दुनिया में निश्छल प्रेम की कहानी आकाश तथा सागर की लहरों में भी गूँजती रही हो। और जहाँ इस शोर-गुल की दुनिया का त्याग किया गया हो।

जहाँ साँझ-सी जीवन छाया,
ढीले अपनी कोमल काया,
नील नयन से ढलकती हो,
ताराओं की पाँति घनी रे।

अर्थ—जिस दुनिया में संध्या के समान जीवन की छाया अपनी कोमल काया (शरीर) नीली आँखों के मार्ग से ढुलकाती हो अर्थात् जहाँ इस जीवन की ठण्डी छाया (जीवन का असली सुख) हमें मिल सके और जहाँ यह जीवन-छाया अपनी कोमल काया को आँखों के रास्ते से ढालकर मोतियों की घनी पंक्ति बरसाती हो। अर्थात् जिस दुनिया में पहुँच कर मुझे दैवी प्रकाश की किरणें प्राप्त हों, उस दुनिया में ले चल।

जिस गम्भीर मधुर छाया में—
विश्व चित्रपट चल माया में—
विभुता विभु-सी पड़े दिखाई
दुःख-सुख वाली सत्य बनी रे॥

अर्थ—इस संसार रूपी चित्रपट (तस्वीर) की चंचल माया में अर्थात् माया-जाल से घिरे हुए इस जगत् में जिस गम्भीर और मीठी छाया में जहाँ परमात्मा के समान विभुता (व्यापकता—अनन्तता) दुःख-सुख को साथ लेकर सचाई का अंचल पहने हुए दिखाई पड़े वहाँ हे नाविक ! तू मुझे ले चले। इस जगत् के सीमित दायरे को छोड़कर जहाँ संसार की व्यापकता के हर पहलू में दर्शन हों वहीं जाना चाहिए।

श्रम-विश्राम क्षितिज बेला से—
जहाँ सृजन करते मेला से—
अमर जागरण उषा नयन से—
बिखराती हो ज्योति घनी रे !

अर्थ—जहाँ क्षितिज (जहाँ ज़मीन और आकाश मिले हुए दीख पड़ें) की ओर से मेहनत तथा आराम दोनों उत्सव जैसा निर्माण करते हों अर्थात् समग्र क्षितिज में मेहनत तथा आराम दोनों समान रूप से लोगों के लिए सुख-पूर्ण हों, और अमरता तथा जागृति (Awakening—rising) का सवेरा अपनी आँखों से गहरे प्रकाश को बिखराता हो, अमरता और जागरण का प्रातःकाल ऐसा फैला हुआ हो कि जिस में गाढ़ा प्रकाश जगमगा उठे। अर्थात् जहाँ की जनता में अमरता और जागृति के भाव भरे रहने के कारण उन में एक अलौकिक प्रकाश प्रकट हो रहा हो। ऐसी दुनिया की ओर हे नाविक ! तू मुझे भुलावा देकर ले चल।

शब्दार्थ—कोलाहल=शोर, पाँति=पंक्ति—लाइन—कतार, चित्रपट=तस्वीर, फोटो—(Picture) विभुता—व्यापकता, विभु=सर्वव्यापक—परमात्मा, श्रम—मेहनत, विश्राम=आराम, सृजन=बनाना—तैयार करना—रचना।

असन्तोष

संकेत—यह पद्य भाग श्री 'प्रसाद' की रचना 'झरना' से लिया गया है। इस में कवि असन्तोष (Dissatisfaction) के सम्बन्ध में अपने विचार

देता हुआ कहता है—हरे-हरे वन-उपवन, सुगन्धित हवा, चाँद के दीपक का प्रकाश, नीले आकाश का विस्तार तथा प्रकृति की अनुपम सुन्दरता रहते हुए भी मानव अपने को तुच्छ स्वार्थों के घेरे में बाँधकर इस आनन्द के विशाल क्षेत्र को भूलकर संसार के उस महान् वरदान को लघु बना रहा है। इस अवस्था में उसके लिये मोतियों का हार आँसुओं का हार बन गया है और संसार भर का विश्वास भी कहीं जा छिपा है। अगर मानव में असन्तोष नहीं तो किसी का क्या दोष !

भाव—हरा वन, खिले हुए वृक्षों के झुण्ड, सुगन्धित वायु तथा उससे झरने वाला मकरन्द (शहद) और स्नेहपूर्ण चाँद का दीपक तथा बालक बनकर खेल रहा है। अनेक ऐसी सुखों की दौलत रहने पर भी मानव के लिये उसका छोटा सा घर ही सुखों का मूल बना हुआ है। वह इसी में भूला हुआ है। नीले आकाश का विस्तार, प्रकृति की सुन्दरता आदि जो संसार के बड़प्पन का सार था आज लघुता का सार बना हुआ है। तुम्हारा मोतियों का हार आज इस अवस्था में आँसुओं का हार बन रहा है यानी कि प्रकृति के विशाल सुख को इस प्रकार की लघुता की सीमा में बाँधना ही सुख को दुःख स्वरूप करना है। जो मोतियों का हार तुम्हें पाकर भी न भरा अब छोटे से जल का मीन (मछली) बन चुका है और अब विशाल आत्म-विश्वास जैसे साकार को तैर कर उस पार जाकर कहीं छिप गया हो।

हरित वन कुसुमित हैं द्रुम-वृन्द,
बरसता है मलयज मकरन्द।
स्नेहमय सुधा दीप है चन्द;
खेलता शिशु होकर आनन्द।
क्षुद्र गृह किन्तु हुआ सुख-मूल, उसी में मानव जाता भूल ॥

अर्थ—हरे वन, खिले हुए वृक्षों के झुण्ड, मकरन्द वरसाने वाली सुगन्धित हवा, स्नेह से परिपूर्ण यह अमृत-भरा चाँद रूपी दीपक और बालक (बच्चा) के रूप में खेलता हुआ आनन्द इन सब सुख साधनों के रहने पर भी आज भूला हुआ अपने छोटे से घर को ही सुख का मूल समझ रहा है।

नील नभ में शोभन विस्तार,
प्रकृति है सुन्दर, परम उदार।
नर हृदय, परिमित, पूरित स्वार्थ,
बात जँचती कुछ नहीं यथार्थ।
जहाँ सुख मिला न उससे तृप्ति; स्वप्न सी आशा मिली सुषुप्ति।

अर्थ—नीले आकाश में सुन्दर विस्तार (फैलाव) है, बड़ी उदार (Broad) और सुन्दर प्रकृति (Nature) हमारे सामने है, किन्तु मनुष्य का हृदय सीमित (Limited) है। उसे कोई भी बात यथार्थ (To the point) अर्थात् सीधी-सीधी नहीं जँचती। इसी कारण इस संसार में उसे न तो सुख मिला और न तृप्ति, केवल स्वप्न जैसी आशा ही मिली जो सुषुप्ति (Sleepiness) जैसी है। अर्थात् स्वप्न की भाँति झूठी आशा जिसमें केवल नींद की उदासी भरी हुई है, मानव के हाथ लगी। उसे सच्चा सुख नहीं मिल सका इसलिये कि उसने प्रकृति के अनुपम सुखों की उपेक्षा करते हुए छोटे से घर को ही सुखों का मूल बना लिया।

प्रणय की महिमा, का मधु मोद,
नवल सुखमा का सरल विनोद।
विश्व गरिमा का जो था सार,
हुआ वह लघिमा का व्यापार।
तुम्हारा मुक्तामय उपहार; हो रहा अश्रु-कणों का हार।

अर्थ—प्रेम की महिमा (Greatness) की मीठी खुशी या सुगन्धि, नई शोभा का सीधा-साधा विनोद (मन बहलाव—Enjoyment) और संसार की महानता का सार ये सब अब लघुता का एक व्यापार बन चुके हैं। अर्थात् संसार की ये सब बड़ी वस्तुएँ आज मानव ने अपनी हीन भावना से उन्हें भी हीन कर डाला है। तो फिर तुम्हारा मोतियों का हार भी अब आँसुओं का हार बन चुका है।

भरा जो तुमको पाकर भी न,
हो गया छिछले जल का मीन।
विश्व-भर का विश्वास अपार,
सिन्धु-सा तैर गया उस पार।
न हो जब मुझको ही सन्तोष ; तुम्हारा इसमें क्या दोष।

अर्थ—जो तुम्हें पाकर भी न भरा जा सका अब वह थोड़े से पानी का मीन (मछली) बन गया है। जो मनुष्य इस अनन्त संसार के सुखों को पाकर भी नहीं भरा था वह अब छोटे से घर का प्राणी बन कर मछली की भांति थोड़े से पानी में रहने लगा है। अब संसार भर का वह विश्वास भी मानो सागर को पार कर गया है। जब मुझे ही सन्तोष न हो तुम्हारा इसमें क्या दोष है। अर्थात् जब मानव को ही सन्तोष नहीं तो संसार के इतने बड़े सुखों के साधन (जो ऊपर दिखाए जा चुके हैं) का उसे लाभ न मिलने में उनका क्या दोष हो सकता है!

शब्दार्थ—कुसुमित=खिले हुए—फूले हुए, द्रुम-वृन्द=पेड़ों के झुण्ड, मलयज=मलय पहाड़ की हवा (मलय पर चन्दन के पेड़ होने के कारण वहाँ की हवा सुगन्धित होती है), मकरन्द=शहद, परिमित (Limited), पूरित=भरा हुआ, सुषुप्ति=नींद, विनोद=मन-बहलाव, गरिमा=बड़प्पन, लघिमा=छोटापन, सार=तल—निचोड़, मुक्तामय=मोतियों का, उपहार=भेंट।

———

प्यारे भारत देश

[माखनलाल चतुर्वेदी]

संकेत—यह पद्य भाग श्री माखनलाल चतुर्वेदी की फुटकल कविताओं में से लिया गया है। यह कविता उन्होंने २६ जनवरी के दिन जब स्वतन्त्र भारत का गण दिवस मनाया जा रहा था, बनाई थी। इसमें कवि ने प्यारे भारत देश का जय-गान किया है, जिसमें ऋषियों का तेज, वेदों के मन्त्रों की झंकार, राम, कृष्ण तथा बौद्ध आदि अवतारों की अमर वाणियों और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों—इनकी महानता पर संकेत किया गया है।

भाव—हे प्यारे भारत देश, तुम्हारी जय हो। तेरा यश प्रति आकाश में फैला है, और तेरा बल हर वायु में हिलोरें ले रहा है। धरती, जल, आकाश आदि पर झूलने डाल कर यहाँ के कोटिकोटि सुनहरे चरण उन पर संचरण कर रहे हैं। अरे ऋषियों के प्रकाश प्यारे भारत! वेदों से लेकर बलिदानों (यज्ञ में पशु-बलियों तक) तक एक प्रकार की होड़ लगी हुई थी तथा प्रातःकाल की पहली किरण से जो सुनहरी ज्योति (प्रकाश) यहाँ जगी थी। गंगा भी खेतों और खलिहानों तक उतर पड़ी। ऐसा लगता था कि मानो संसार के दुःखों की बात सुन कर बलि पर चढ़ने वाले महिमानों तक आँसू आ गए हों। तेरे ऊँचे-ऊंचे पहाड़ आकाश को इशारे कर रहे हैं। तेरे जंगल मानो हवा के इरादे हैं। राम, कृष्ण और बौद्ध की वाणियाँ भी तुझमें गूँज रही हैं। काबा से कैलाश तक कविता भी गति भर रही है। यहाँ के जपी-तपी, खेतिहर आदि सब कृष्ण के रंग में रंगे हुए हैं। हम सब अनेक रूप हो कर एक हैं और जागृत एशिया की सीमा के अन्दर रह कर हमें कोई खेद या दुःख नहीं है।

प्यारे भारत देश,
गगन-गगन तेरा यश फहरा
पवन-पवन तेरा बल गहरा,
क्षिति-जल-नभ पर डाल हिंडोले
चरण-चरण संचरण सुनहरा ॥
ओ ऋषियों के त्वेष ।
प्यारे भारत के देश ॥

अर्थ—हे प्यारे भारत देश, तेरा यश हर आकाश में फहर रहा है। तेरा बल प्रत्येक हवा में गहराई के साथ व्यापक हो रहा है। धरती, जल और आकाश पर झूलने डाल कर उन पर कोटि-कोटि पैर संचरण कर रहे हैं। ऋषियों के तेज तथा प्यारे भारत देश !

वेदों से बलिदानों तक जो होड़ लगी
प्रथम प्रभात किरण से हिम में ज्योति जगी ।
उतर पड़ी गंगा खेतों-खलिहानों तक
मानो आँसू आए बलि-मेहमानों तक ।
सुनने कर जग के क्लेश ।
प्यारे भारत देश ॥

अर्थ—वेदों से बलिदानों तक जो होड़ (Competition) लगी थी, प्रातः काल की पहली किरण से इस देश में बर्फ के अन्दर एक ज्योति सी जगमगा उठती थी अर्थात् वैदिक-काल में प्रकृति के देवों की उपासना का युग था जो आगे चलकर बलिदानों का युग बन गया। इस युग में वेदमन्त्रों की व्याख्या यज्ञ में पशु-बलि बढ़ाना की गई थी, इन विचार धाराओं की होड़ इसी भूमि पर थी। यहाँ का प्रातः काल इतना सुहाना है कि उसकी एक किरण बर्फ से मण्डित हिमालय पर पड़ने से वहाँ की शोभा सोने जैसी सुनहरी हो जाती है। इसी भारत भूमि पर गंगा जैसी पवित्र और निर्मल नदी खेतों से खलिहानों तक फैल गई। मानो कि संसार के क्लेश सुनकर इसके आँखों में आँसू आ गए हों।

तेरे पर्वत-शिखर कि नभ को भूके मौन इशारे
तेरे बन, जग उठे पवन से हरित इरादे प्यारे!
राम, कृष्ण के लीलामय में उठे बुद्ध की बाणी
काबा से कैलाश तलक उमड़ी कविता कल्याणी।
बातें करे दिनेश।
प्यारे भारत देश ।।

अर्थ—तेरे पर्वतों की चोटियाँ मानो आकाश को धरती की ओर से इशारे हैं। तेरे बन (जंगल) वायु का कम्पन पाकर उसके हरे-भरे इरादे (निश्चय) जैसे बनकर जाग उठे हैं। यहाँ राम और कृष्ण की लीलाओं में बुद्ध की वाणी गूंज रही है। अर्थात् राम, कृष्ण और बुद्ध जैसे महान अवतार यहीं पर उतरे थे काबा से कैलाश तक यहाँ कल्याण-कारक कविता उमड़ पड़ी है। और यहीं पर सूर्य बातें करता हुआ सा लगता है।

जपी-तपी संयासी खेतिहर कृष्ण रंग में डूबे
हम सब एक, अनेक रूप में क्या उभरे क्या ऊबे।
सजग एशिया की सीमा में रहता खेद नहीं
काले गोरे रंग बिरंगे हम में भेद नहीं।
श्रम के भाग्य निवेश।
प्यारे भारत देश ।।

अर्थ—जपी-तपी (जप तथा तप करने वाले) संयासी, किसान आदि सब यहाँ पर कृष्ण के रंग में डूबे हुए हैं अर्थात् भगवान कृष्ण के कदमों पर चलने वाले हैं। हम सब अनेक रूपों में होते हुए भी एक रूप में हैं। जागृत एशिया की सीमा के अन्दर रह कर किसी को कोई कष्ट नहीं होता। हम एशिया-वासी काले-गोरे तथा रंग-बिरंगे आदि भेदों में नहीं पड़ते क्योंकि हम एकता के संदेश-वाहक रहे हैं।

हे परिश्रम द्वारा भाग्य का स्थान बने हुए प्यारे भारत देश!

वह बज उठी बाँसुरी यमुना तट से धीरे-धीरे ।
उठ आई यह भारत मेदिनी, शीतल मन्द समीरे ।
बोल रहा इतिहास, देश सोए रहस्य है खोल रहा,
जय प्रयत्न, प्रयत्न जिन पर आन्दोलित-जग हँस-हँस
जय बोल रहा ।

जय निधि अमित अशेष ।
प्यारे भारत देश ॥

अर्थ—वह देखो यमुना के तट पर से धीरे-धीरे बँसी बज उठी है । शीतल और मन्द (ठण्डी और धीरे-धीरे चलने वाली) हवा में यह धरती उभर कर आ गई है । इतिहास मानो बातें कर रहा है अर्थात् इसका उज्ज्वल (Shining) इतिहास इसकी महानता की बातें कर रहा है । और यह देश (भारत) बड़े गहरे रहस्य (Mysteries) जिन्हें दुनिया के दार्शनिक तथा वैज्ञानिक (Philosophers and scientists) खोलने में असमर्थ हैं, खोल रहा है । इसके वे जय-शील यत्न हैं जिन पर संसार लट्टू जैसा होकर इसकी जय-जयकार बोल रहा है ।

हे विजय के भण्डार प्यारे भारत देश ।

शब्दार्थ—फहरा=फैला—गूँजा, क्षिति=पृथ्वी, संचरण=घूमना—फिरना, त्वलेष=प्रकाश—तेज, मौन=चुप-चाप, लीलामय=लीला का घर, दिनेश=सूर्य, भाग्य निवेश=क़िस्मत का स्थान—क़िस्मत की स्थापना, मेदिनी=पृथ्वी, आन्दोलित=Agitated, अमित=अधिक, अशेष=बिल्कुल (Totally)

फूल की अभिलाषा

संकेत—यह कविता भाग श्री चतुर्वेदी की कविताओं में से लिया गया है । इसमें कवि ने मातृ-भूमि से गाढ़ प्रेम रखने वाले फूल की अभिलाषा (इच्छा) का चित्रण किया है । फूल कहता है कि उसे ऊँचे तथा सम्मानित स्थानों पर

बैठना अभीष्ट नहीं, जीवन में उसकी केवल मात्र यही इच्छा है कि उसे उस मार्ग में डाल दिया जाये जहाँ मातृ-भूमि पर सिर चढ़ाने वाले वीर पुरुष चलते हों।

भाव—फूल कहता है—हे हरि ! मुझे चाह नहीं है कि मैं देव सुन्दरी के गहने में गूँथा जाऊँ, प्रेमी की माला में बिंध कर प्रेमिका को ललचाऊँ, सम्राटों के शवों पर रखा जाऊँ या देवताओं के सिरों पर चढ़ कर अपने भाग्यों पर घमण्ड करूँ। हे माली ! मातृ-भूमि की रक्षार्थ अपने सिर चढ़ाने वाले शूर-वीर जिस मार्ग से होकर जाते हैं उसी मार्ग में मुझे डाल देना ताकि उनकी चरण धूली लेकर मैं भी अमर हो जाऊँ।

—Bharat Bhushan Joshi

विधवा

[सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला']

संकेत—यह कविता-भाग 'निराला' जी की रचना 'परिमल' से लिया ग है। इसमें निराला जी ने भारत की विधवा की जीवन-झाँकी का एक करु भरा चित्र उतारा है। वह भारत की विधवा दीप शिखा (दीए की लौ) भाँति शान्त, निर्दय तथा कठोर काल की स्मृति-रेखा के समान और टूटे वृ से टूटी हुई लता की भाँति है। वह छः ऋतुओं के शृंगार तथा खिले हुए जं में सुख से विहार करने की पीड़ा की भूली हुई एक कथा है अर्थात् गत जीवन सुनहरे दिनों की याद में जो पीड़ा होती है, उसी की भूली हुई कथा है। व अपने जीवन के गत दर्पण को भी देखती है जिसमें कभी उसका सुहाग प्रति बिम्बित (Reflected) हुआ था उसकी करुणा कहानी को निश्चल वा तथा सागर की लहरें भी सुनती हैं। उसके साथ जगत् में किसी की सह नुभूति नहीं।

> वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा-सी,
> वह दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन।
> वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा सी,
> वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन—
> दलित भारत की ही विधवा है।

अर्थ—वह भारत की विधवा इष्ट देव के मन्दिर की पूजा की भाँति अर्थात् जैसे देवता के शान्त मन्दिर की शान्ति भरी पूजा में जैसी कि सरलता निष्कपटता तथा पवित्रता रहती है, उसी प्रकार विधवा का भी सौम्य औ सरल रूप है। वह दीए की लपट के समान शान्त भाव में लीन रहती है जैसे वायुहीन देश में दीए की लपट बिना कम्पन के एक टक होकर शान्त भा

जलती रहती है, उसी भाँति विधवा भी शान्त भाव होकर अपने में लीन रहती है। वह क्रूर मृत्यु के उपद्रव के स्मरण की किरण जैसी है। जैसे कठोर काल के ताण्डव का स्मरण आते ही मनुष्य की रग-रग में भय की सिहरण दौड़ जाती है, उसी प्रकार उस बाल-विधवा की कारुणिक दशा का स्मरण आते ही महा अनर्थ का डर मनुष्य के रोम-रोम में सिहर उठता है। वह विधवा एक टूटे हुए वृक्ष से अलग हुई लता के समान है जो जीवन में निराश्रित और अरक्षित है। ऐसी दीन और दलित (दीन— गरीब, दलित—कुचली हुई) भारत की विधवा है, अर्थात् उसके जीवन की यही करुणा-भरी झाँकी है।

षड् ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है
उसके मधु सुहाग का दर्पण।
जिसमें देखा था उसने
बस एक बार बिम्बित अपन जीवन-धन
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा-वह ध्रुवतारा
दूर हुआ वह बहा रहा है
उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।

अर्थ—छः ऋतुओं के शृंगार (शोभा) की, खिले हुए जंगल में चुप-चाप घूमने की तथा अमर कल्पना (Immortal imagination) में स्वतन्त्रता से घूमने की पीड़ा की एक भूली हुई वह (विधवा) एक कथा है। अर्थात् छः ऋतुओं के उत्सव तथा रंगीन कल्पनाओं में विचरण करने की गत कहानी का स्मरण आते ही जैसे दुःखी हृदय में पीड़ा का तूफान उमड़ आता है उसी प्रकार यह विधवा भी गत सुहाग की रंगरलियाँ याद कर पीड़ा की भूली हुई कथा सी बन जाती। जिस प्रकार हरे-भरे जीवन वन के उजड़ जाने से

केवल उसका दुःखाने वाला स्मरण बाकी रहकर समय-समय पर जागृत हो सताया करता है उसी प्रकार विधवा भी अपने गत सुखी जीवन का स्मर करके दुःखी होती है। अथवा उसका एक स्वप्न अवश्य है, वह यह कि उस जीवन का वह दर्पण (शीशा) जिसमें उसने एक बार अपने मधुर जीवन धन प्रतिबिम्बित (परछाई---Reflection) होते देखा था वही उसके निः हाथों का एकमात्र सहारा था, जीवन का प्यारा और ध्रुवतारा जैसा था अब वही प्यारा जीवन दूर होकर अनन्त के मार्ग से करुणा (Tragedy) की धारा बहा रहा है।

हैं करुणा रस से पुलकित इसकी आँखें,
देखा तो भीगीं मन-मधुकर की पाँखें ;
मृदु रसावेश में निकला जो गुञ्जार
यह और न था कुछ था बस हाहाकार !
उस करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर
लघु टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ा कर
अति छिन्न हुए अंचल में मन को—
दुखे रूखे-सूखे अधर मस्त चितवन को
वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
रोती है अस्फुट स्वर ;
दुःख सुनता है आकाश धीर—
निश्चल समीर,
सरिता की वे लहरें भी ठहर-ठहर कर।

अर्थ—उसकी (विधवा की) आँखें करुणा (दया) के रस से पुलकि रहती हैं। उसकी आँखों में दया का साकार चित्र दीखता है। उसके मन भौंरे की पाँखें (पंख) हमेशा भीगी ही रहती हैं। अर्थात् उसका मन अ दयनीय और दीन-हीन दशा को देखकर रोता रहता है। कोमल भावना के में कभी लीन होकर अर्थात् कभी (Mood) में आकर उसके हृदय से सरस गुञ्जार-गुनगुनाहट फूट पड़ती है वह भी वास्तव में आनन्द भरा उद

नहीं, केवल हाहाकार (दु:ख भरी पुकार) ही होता है। उस करुणा की नदी के मैले तट पर स्थित छोटी सी टूटी हुई कुटियाँ का मौन (चुप-चाप—नीरवता) बढ़ाकर अर्थात् करुणा भरा जीवन एकान्त कुटिया में चुप-चाप (संसार से एकान्त होकर) बिताती हुई, अपने छिछले हुए गीले दुपट्टे के भीतर ही भीतर मन को, दु:खित और रूखे-सूखे होठों और डरी हुई दृष्टि को संसार की नजरों से बचाकर धीमे स्वर से रोती है। उसके इस दु:ख को आकाश और स्थिर हवा तथा नदी की लहरें भी ठहर-ठहर कर सुनती रहती हैं।

कौन उसको धीरज दे सके ?
दु:ख का भार कौन ले सके ?
यह दु:ख वह जिसका नहीं कुछ छोर है,
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है !
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रु जल ?
या किया करते रहे सबको विकल ?
ओस कण सा पल्लवों से झर गया।
जो अश्रु, भारत का उसी से सर गया ॥

अर्थ—उस विधवा को इस हालत में कौन धीरज दे सके ? उसे यह दु:ख तो ऐसा है कि जिसका कोई किनारा नहीं है। भाग्य का अत्याचार कितना घोर और कठोर है ! उस विधवा की आँखों से बहते हुए आँसू क्या कभी किसी ने पोंछे या उन्होंने कभी किसी को व्याकुल किया ? अर्थात् उसके दु:ख-भरे आँसू देखकर किसी को दु:ख हुआ ? (नहीं हुआ।) वे आँसू, जिस प्रकार ओस के कतरे पत्तों से नीचे लुढक पड़ते हैं, इसी भाँति ढुलक जाते—हैं कोई उनकी ओर ध्यान नहीं देता। वे आँसू अन्त में भारत के सिर जाने का कारण बनते हैं।

शब्दार्थ—दीप-शिखा=दीए की लपट, क्रूर=दुष्ट, ताण्डव=भयंकर खेल या भयंकर नाच, स्मृति रेखा=स्मरण की किरण, नीरव=चुपचाप, पदसंचार=घूमना, स्वच्छन्द=स्वतन्त्र—निडर, भीगी=गीली, आँखें=पंख, पुलिन=किनारा, चितवन=नजर, अस्फुट=अस्पष्ट—धीमे (Not clear), छोर=किनारा।

———

भिखारी

संकेत—यह कविता भाग श्री 'निराला' की रचना 'परिमल' से लि गया है । इस में कवि किसी भिखारी का दर्द भरा चित्र खींचता है । वह भिखा अपने ही समान दो बच्चों को साथ लिए है, उसकी पीठ और पेट भूख से हो चले हैं, लकुटी (सोटी) के बल पर चला जा रहा है, फटी-पुरानी झो फैलाए वह मुट्ठी भर दाने माँग रहा है । जब दाता से कुछ नहीं मिलता आँसुओं का घूँट पीकर रह जाता है ।

भाव—वह भिखारी कलेजे के दो टुकड़े करता हुआ और पछताता हु रास्ते पर आता है । उस के पेट-पीठ दोनों एक साथ जुड़े हैं यानी कि दिनों की भूख से पेट और पीठ सिकुड़ कर एक से हो गए हैं । वह सोटी सहारे चल रहा है । भूख के कारण उसकी टाँगों में चलने का बल भी न रहा । अपनी भूख मिटाने के लिए मुट्ठी भर दाने माँगने के लिए फटी-पुरा झोली फैलाए हुए है । उस के साथ दो बच्चे भी हैं, जो हाथ फैला कर माँग हैं । वे बाएँ हाथ से पेट को मलते हुए चलते हैं और दाहिने हाथ को फैला लोगों की दया-दृष्टि पाना चाहते हैं अर्थात् दाहिना हाथ सब के आगे जा फैलाते हैं । जब उनके होठ भूख के कारण सूख जाते हैं तब दाता, भाग्य-विधा (भाग्य बनाने वाला) से क्या पाते हैं ? अर्थात् जिसके आगे हाथ पसार उसे दाता, भाग्य-विधाता कहते है अन्त में उस से कुछ नहीं पाते और आँसु का घूँट पीकर रह जाते हैं । कभी तो वे सड़क पर खड़े-खड़े जूठी पत चाटते हैं और कभी उनके हाथों से रोटी छीन लेने को कुत्ते अड़े हुए हैं । उन अवस्था ऐसी दर्दनाक है कि मुश्किल से अगर कहीं से उन्हें रोटी का टुकड़ा मि जाता है तो उसे झपटने के लिए कुत्ते आगे ही तैयार रहते हैं ।

शब्दार्थ—टूक=टुकड़ा, लकुटिया=सोटी (Stick), टेक=सहारे,

मुरझाया फूल

[महादेवी वर्मा]

संकेत—यह कविता श्री महादेवी वर्मा की कविताओं में से ली गई है। कवयित्री एक फूल के जीवन की झाँकी दिखलाती हुई कहती है—हे सूखे फूल! जब तेरा यौवन मुस्का रहा था तो भौंरे भी तेरी लोरियाँ गाते थे, हवा तुम्हें गोद में खिलाती थी, चन्द्रमा की स्निग्ध किरणें तुझे हँसाती थीं इत्यादि, परन्तु अब तेरे मुरझाने पर कोई भी तर्स नहीं खाता और न तेरी बात भी पूछता है, तूने सुगन्धि लुटाई थी पर इसका प्रतिकार संसार ने तुझे नहीं दिया। जब तेरे साथ संसार इस तरह पेश आता है तो मेरे जैसे बेकार आदमी के मरने पर कौन आँसू बहाएगा?

भाव—हे फूल, जब तू बचपन में कली के रूप में था तो कितना सुन्दर मुस्काता था। उस समय हवा तुम्हें गोद में खिलाती थी। जब तू खिल गया तो तुझ पर भौंरे मँडराने लगे, चन्द्रमा की कोमल किरणें तुझको हँसाती थीं। रात तुझ पर मोती वारती थी। भौंरे लोरियाँ गा-गा कर तुझे सुलाते थे और माली तुझे आनन्द देने के लिए यत्न करता रहा। तू इस हालत में बाग में इतरा कर अठखेलियाँ कर रहा था। तुम्हारी यह दशा (मुरझाना) क्या कभी किसी ने सोचा था? आज तू धराशायी हो रहा है। आज तुम्हारे पास भौंरा नहीं आता और प्रातःकाल तुझ पर लालगी नहीं बरसाता। जिस बापू ने तुझे गोद में खिलाया था, उसी ने एक झटके से तुम्हें धराशायी बना दिया। तुमने मिठास और सुगन्धि का दान एक ही दिन में कर दिया, पर संसार ने तुम्हारे लिए दो आँसू भी नहीं बहाए। हे फूल, तू शोक मत कर। आजतक जगत ने किसको सुख दिया है? तूने सब को खुश किया और दान दिया। आज जब तेरी अवस्था पर संसार को दुःख नहीं हुआ तो हे फूल, हमारे जैसे बेकार मनुष्यों को कौन रोएगा?

अर्थ—हे सूखे हुए फूल, तू जब पहले कली के रूप में था तो हँसी
रहा था, हवा तुझे पहले गोद में खिलाती थी। जब तू पूरा खिल गया तो
रूप अधिक सुन्दर और कोमल दीखने लगा। इस समय लोभी भौंरे शहद
लिये तेरे पास आकर मँडराने लगे। तुझे चन्द्रमा की स्निग्ध (स्नेह-भ
किरणें सदा हंसाती थीं, रात तुम पर मोतियों की दौलत लुटाती थी,
लोरियाँ दे-देकर तुम्हें सुलाते थे और माली का यत्न सदा तुम्हें आनन्द
का ही रहता था। उस समय तू बाग में ऐंठ कर अठखेलियाँ करता
था। क्या तेरे ध्यान में कभी यह अन्तिम (मुरझाने का) दृश्य भी आया था

अब तू सूखा और बिखरा हुआ धरती पर सोया पड़ा है अर्थात् मु
कर नीचे गिर पड़ा है। अब तुझ में वह गन्ध नहीं है और तुम्हारा मु
मुख भी मुरझा गया है। आज तुम्हें देखकर तुम्हारा चाहक भौंरा भी
आता, प्रातःकाल तुझ पर अपनी लालगी नहीं बरसाता और जिस पवन
तुझे गोद में लेकर प्यार किया था उसी ने तुझे प्रबल झोंके से ज़मीन
सुला दिया। तुम ने एक ही दिन अपनी सुगन्धि और शहद का दान कर
था परन्तु हे दानी फूल ! तेरे लिये अब कौन रोता है ? हे फूल ! तू मत
हो, संसार ने किस को सुख दिया है ? इस दुनिया में तो भगवान् ने स
स्वार्थी ही बनाया है। हे फूल ! संसार में तू सब को अच्छा लगता
(जब तू खिला हुआ था) हाय ! अपना सर्वस्व देकर भी खुशी ही मन
रहा। अब जब तेरी इस मुरझाने की दशा पर संसार को दुःख नहीं हुआ
मेरे जैसे निस्सार (बेकार) मनुष्य पर कौन रोयेगा ?

शब्दार्थ—शैशव=बचपन, सुमन=फूल, हास्य=हँसी, मंजुल=सु
क्षुब्ध=लोभी, सम्पदा=दौलत, विवश=लाचार, अठखेलियाँ=आनन्द
नाचना—झूमना, इतरा=ऐंठ कर—अकड़ कर, उद्यान=बाग, शुष्क=
तीव्र=तीखा—वेग-भरा, सौरभ=सुगन्ध, हरषता रहा=खुश होता
मनुज=मनुष्य।

एक बार

संकेत—यह पद्य भाग श्री महादेवी वर्मा की कविताओं में से लिया गया है। इसमें कवयित्री अपने प्रेमी (ईश्वर) से कहती है कि अगर वह कवियत्री के पास आजाता तो उसके सब दुःख-दर्द फूल की सुगन्ध का रूप धारण करके प्रेमी के मार्ग में छा जाते। प्रेमिका के प्राणों का तार-तार गा उठता और आँसू चरणों को धो देते। उसके जीवन में नई बहार आ जाती और होठों का दुःख भी धुल जाता।

अर्थ—अगर तुम एक बार आ जाते तो कितनी दया तथा संदेश तुम्हारे रास्ते पर सुगन्धि बनकर फैल जाते अर्थात् तुम्हारे वियोग की करुणा जो मुझे दिन-रात सताया करती है और मेरे वे संदेश जो तुम्हें भेजती रहती हूँ तुम्हारे आने पर स्वागत के लिये मानो सुगन्धि बनकर तुम्हारे रास्ते में छा जाते। उस समय खुशी से मेरे प्राणों का तार-तार गा उठता और उन्माद यानी मस्ती-भरा प्रेम भी हृदय में हिलोरें लेने लगता और तुम्हारे विरह से उमड़े हुए आँसू तुम्हारे चरणों को धो देते। अगर तुम एक बार आ जाते, पल भर में मेरे ये गीले नेत्र हँस उठते। होठों का दुःख भी धुल जाता, जीवन में नई बसन्त बहार आ जाती और देर से इकट्ठा किया हुआ विराग भी लुट जाता अर्थात् तुम्हारे वियोग में सब वस्तुओं के प्रति पैदा हुआ विराग तुम्हारे आने पर दूर हो जाता। अगर तुम एक बार आ जाते तो।

शब्दार्थ—पथ=रास्ता, पराग=सुगन्धि, अनुराग=प्रेम, उन्माद=मस्ती, पखार=धोना, आर्द्र=गीले, संचित=इकट्ठा किया हुआ, वार=अर्पण करना—दे देना—लुटाना।

———

लोगी मोल ?

[सुमित्रा नन्दन 'पंत'

संकेत—यह कविता श्री पन्त की रचना 'गुञ्जन' में से ली गई है। इ
में कवि प्रकृति की सुन्दर वस्तुओं का मोल-तोल करते हुए कहता है कि चंच
बर्फ, कोयल के बोल, जीवन की लहरें और चाँदनी का अमूल्य प्रकाश क
मोल लोगी ? उत्तर मिलता है 'कुछ नहीं'।

अर्थ—मैं फूलों की हँसी और चंचल बर्फ का उल्लास (प्रफुल्लता—शोभ
लाई हूँ क्या मोल लोगी ? बसन्त बहार की लपट चारों ओर फैल गई है,
की डाली-डाली उससे जल उठी है। इस समय कोयल के कुछ कोमल बोल मैं
लोगी ?

बरसात उमड़ कर जगत् को पानी से परिपूर्ण कर रही है और नए
पानी के स्रोत (झरने—चश्मे) फूट निकले हैं। जीवन की ये लहरें क्या मो
लोगी ? बादलों का पर्दा खोलकर यह अजान शरद् ऋतु की चाँदी के स
मुस्कान छाई हुई है। प्रकाश की यह अमूल्य ज्योत्सना (कान्ति—Shinin
क्या मोल लोगी ?

इस समय प्रकृति सुन्दर है और संसार में बाल-परिन्दे (पक्षियों के बाल
बोल रहे हैं। तुम जी खोलकर सुन लो कि आज मैं कुछ भी मोल नहीं लूँ

शब्दार्थ—तरल=चंचल, तुहिन=बर्फ, उल्लास=खुशी—
पावस=वर्षा ऋतु—बरसात, परि-स्रोत=प्रवाह—बहाव, लोल=च
जलद-पट=बादल रूपी कपड़ा, ज्योत्स्ना=शोभा, चहक रहे=गूँज रहे।

———

चिर-सुख

संकेत—यह कविता पंत जी की रचना 'पल्लव' से ली गई है। इस में कवि का अभिप्राय है कि प्रकृति की जड़-वस्तुओं में भी जीवन के सुन्दर नियम हैं किन्तु वे हम में नहीं पाये जाते। जैसे सूखे वन में पैदा होकर भी फूल हँसता रहता है और सूनी डाली पर पैदा होकर कली ने भी मुसकाना सीख लिया परन्तु हम सुख से दुःख को अपनाना नहीं सीख सके। इस संसार में मुसीबतें और संघर्ष झेलकर ही मनुष्य सोने जैसा उज्ज्वल बन पाता है।

भाव—फूलों के जीवन का क्षण संसार में हँसता ही देखा गया है किन्तु इन मुरझाये हुए मनुष्य के अधरों पर मुस्कान स्थिर रूप से नहीं देखी गई। वन की सूखी डाली पर कली ने मुस्काना सीखा परन्तु मैंने सुख से दुःख को अपनाना नहीं सीखा। संसार की रूखी-सूखी यह डाली काँटों से भरी है परन्तु इसी पर कोमल पत्ते की लालगी फूट निकलती है। (काँटों-भरे संसार में ही सुन्दर सुखों का भी जन्म होता है।) काँटे स्वयं अपना शरीर नहीं बेंधते। इसलिए यह प्राणों का धन सोना बनने के लिए ही तपता है। यह संसार रूपी वन (जंगल) दुःख की आग से नए अंकुर प्राप्त करता है और करुणा से गीले संसार की गर्जना नए जीवन के कतरे बरसाती है।

कुसुमों के जीवन का पल, हँसता ही जग में देखा।
इन म्लानि मलिन अधरों पर, स्थिर रही न स्मिति-रेखा॥
वन की सूनी डाली पर, सीखा कलि ने मुस्काना।
मैं सीख न पाया अब तक, सुख से दुःख को अपनाना॥

अर्थ—फूलों के जीवन का क्षण संसार में हँसता हुआ ही देखा गया है परन्तु हमारे इन मुरझाये हुए होठों पर मुस्कराहट की किरण कभी स्थिर नहीं रही। अर्थात् हमारा जीवन सदा दुःखों से रोता ही रहा। हमने दुःख को खुशी से अपना कर कभी मुस्कान नहीं भरी। कलि ने जंगल की सुनसान

डाली पर पैदा होकर भी सदा मुस्कान ही सीखा। उसने उस मुस्कान को देख भी कभी दुःख नहीं मनाया। परन्तु मैं अभी तक सुख पूर्वक दुःख को अपना नहीं सीख पाया।

काँटों से कुटिल भरी हो, यह जटिल जगत् की डाली।
इस में ही तो जीवन के पल्लव की फूटी लाली॥
अपनी डाली के काँटे, बेंधते नहीं अपना तन।
सोने-सा उज्ज्वल बनने, तपता नित प्राणों का धन॥

अर्थ—इस कठिन जीवन की डाली अगर कुटिल काँटों से भी भरी हो भी इस में जीवन के पत्ते की लालगी फूट निकली है। अर्थात् इस दुःखपूर्ण जीवन में चाहे कितने भयंकर कष्ट हैं फिर भी सुन्दर सुख इसी में उपजा करते हैं। अपनी ही डाली के पत्ते स्वयं अपना तन नहीं बेंधते। अपने शरीर के दुःख इसी शरीर को घाव नहीं पहुँचाते। यह प्राणों का धन सोने जैसा उज्ज्वल (चमकदार) बनने के लिए ही तपता है।

दुःख दावानल से नव अंकुर, पाता जग जीवन का वन।
करुणार्द्र विश्व की गर्जन, बरसाती नव-जीवन कण॥

अर्थ—यह संसार का जीवन रूपी जंगल दुःख की आग से नये अंकुर प्राप्त करता है। जिस प्रकार जंगल आग से जलकर पुनः नए-नए अंकुर पैदा करता हुआ अपने में हरियाली लाता है, इसी प्रकार यह जीवन भी दुःखों की आग से जलकर उज्ज्वल रूप प्राप्त करता है। इस अवस्था में इस करुणार्द्र संसार की गर्जना नए जीवन के कणों को बरसाती है।

शब्दार्थ—म्लान=मुरझाया हुआ, स्मिति=मुस्कुराहट, कुटिल=टे दावानल=जंगल की आग, अंकुर=नयी कोंपल।

वीर-वंदना

[सियाराम शरण गुप्त]

संकेत---यह कविता गुप्त जी की रचना 'पाथेय' से ली गई है। इसमें कवि वीर (बहादुर) वन्दना करते हुए उसके ऊँचे जीवन की झलक देता हुआ कहता है कि वीर का अन्त नहीं होता, वह सारी दुनिया पर छाया रहता है, वह पर्वत के समान विशाल और इस अनन्त में निजता का विस्तार किये हुए है। अपने बाहु-बल से उसने देश पर अपना शासन जामाया है।

भाव—हे शूरवीर तुम्हारा अन्त नहीं है, तुमने सारे संसार को अपने अधीन कर लिया है। पर्वत के समान विशाल हो और तुमने युग-युगों से अपना मस्तक ऊँचा कर रखा है। कठिन पत्थरों की कैद की निर्दय छाती फाड़ कर अपने यश की गंगा बहा रहे हो। संसार के कीचड़ से ऊपर उठ कर तुमने इस संसार में निजता का विस्तार कर रखा है। कठिन एवं अगम्य स्थानों पर भी अपना राज्य स्थापित कर हे शूर सिंह, तुम निडर होकर बन-बन में घूम रहे हो। तुमने छोटे अंकुरों को भी पृथिवी की शक्ति देकर उन्हें हरा-भरा बना कर उनमें अपना अभिव्यक्ति (अपना आप प्रकट करना) की है। उच्छृंखल (अपने वश के बाहर) भावों के समूह को अपनी भाषा द्वारा जीत कर कवि लोग भी अपने कल-कण्ठ से तुम्हारा ही गान करते हैं।

अन्त हीन जय-शील सदा तुम, हे विक्रान्त अशान्त,
किये हुए हो निखिल चराचर, निज बल से आक्रान्त।
यहाँ शैल के महत् शृंग-मिष, तुम ओ महा विशाल,
अयुत युगों से अचल अटल हो, उन्नत कर निज भाल।
कठिन प्रस्तरों की कारा का, निर्मम वक्ष विदार,
बहा रहे हो अपने यश की, सरसरिता की धार।

अर्थ—हे वीर ! तुम सदा से अन्तहीन (जिसका अन्त न हो) और वि
हो। हे विक्रान्त (शूर) तथा अश्यन्त (जिसे चुप-चाप बैठने में शान्ति न
तुम सारे संसार को अपने बल द्वारा अपने अधीन किये हुए हो। यहाँ तुम प
के महान् शृंग (चोटी) की भाँति विशाल हो, वहाँ हजारों युगों से अ
(कायम) और अटल (कभी न हिलने वाले) बने हुए अपने मस्तक को
किये हुए हो। तुम कठिन (कठोर) पत्थरों की कैद की निर्दय छाती फाड़
अपने यश की गंगा की धार बहा रहे हो। अर्थात् संसार में कठिन से कठिन वि
बाधाओं से लड़कर तथा उन्हें चकनाचूर कर अपने यश की गंगा बहा रहे हैं

ऊपर उठ कर पृथ्वी-तल के, धूलि पंक के पार,
किये हुए हो इस अनन्त में निजता का विस्तार।
दुर्गमता में भी स्थापित कर, अपना राज्यातंक,
बन-बन में तुम विचार रहे हो, शूर-सिंह निश्शंक।
क्षुद्रांकुर को भी दे तुमने, भूमि भेदिनी शक्ति,
हरित भरित प्रत्येक क्षेत्र में की अपनी ही व्यक्ति।
चिर उच्छृंखल भाव-राशि को, निज भाषा से जीत।
गान तुम्हारा ही करते हैं कवियों के कल गीत॥

अर्थ—इस पृथ्वी के ऊपर उठ कर तथा इस साँसरिक कीचड़ के उस
जाकर इस अनन्त (सारे संसार) में सब जगह अपनी निजता (अपने
का) का तुमने विस्तार कर रखा है। अपने बाहुबल से संसार में सर्वत्र अप
पन स्थापित कर रखा है)। कठिन स्थानों पर जहाँ पहुँचा नहीं जा सकता
भी तुमने अपने राज्य का आतंक (डर) जमा रखा है। हे शूरसिंह (सिं
समान शूर) तुम बन-बन में निडर हो कर घूम रहे हो। अर्थात् तुम्हें कहीं
नीचा नहीं दिखा सकता और न मार सकता है। तुमने छोटे अंकुरों को भी
की शक्ति अर्थात् ज़मीन का उपजाऊ गुण देकर उन्हें हरा-भरा करते
प्रत्येक स्थान में अपना आप प्रकट किया है। अर्थात् बंजर से बंजर ज़मीनों
भी वीरता और परिश्रम से हरा-भरा करते हुए तुमने अपना आप उस रू
दर्शाया है।

इसी कारण वे-सँभली भावों की लड़ियों को अपनी भाषा में बाँध कर कवि लोग अपने कल कण्ठों से तुम्हारे यश का ही गान करते रहते हैं।

शब्दार्थ—हन्त हीन=आर, आक्रान्त=जिन पर हमला किया हो (Attacked), शैल=पहाड़, शृंग=चोटी, प्रस्तर=पत्थर, कारा=कैद, विदार=तोड़कर, सुरसरिता=गंगा, पंक=कीचड़, दुर्गमता—कठिनता से पहुँना, निश्शंक=निडर, क्षुद्रांकुर=छोटे कोंपल, भूमि-भेदिनी=ज़मीन को पाटने वाली, भावराशि=विचारों का समूह।

———

आज का पुनीत आज

संकेत—यह कविता श्री सियाराम शरण गुप्त की 'बापू' रचना से ली गई है। इसमें कवि का अभिप्राय है कि आज का ही पवित्र आज नहीं बल्कि पीछे भी युग-युगों से इसका राज फैला हुआ रहा है। इसी के अन्दर हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, कुरुक्षेत्र के युद्ध में गीता का ज्ञान इत्यादि तत्त्व स्थान पा चुके हैं।

भाव—हे मेरे देश काल (Place and time)! तेरा अकेला "आज का" अपूर्व (अजीब) आज नहीं बल्कि इसका विशाल राज्य दूर तक फैला हुआ है। यह दूर अतल वितल तक व्याप्त है। इसमें सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता, (दृढ़ता) और तारामण्डल से मिली हुई अनन्त भक्ति और श्रेष्टता से युक्त प्रह्लाद, भी इसी में हुआ है। इसी पुनीत आज ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में निष्काम कर्म योग सिद्ध किया है। इसने पुण्य से प्राप्त पाञ्चजन्म नामक शंख (जो महाभारत के युद्ध में बजाया गया था) के स्वर में जीवन का अमर भोग (न मिटने वाला जीवन का आनन्द) पाया है। इस पुनीत आज में भीष्म का बेजोड़ ब्रह्मचर्य है और इच्छा से मरने की शक्ति भी इसे प्राप्त रही है। इस युद्ध में

परमार्थ भाग (मुक्ति का भाग) मिला है। ईसा से मनुष्य-प्रेम, महावीर से हिं
त्याग तथा धीरता, मुहम्मद से दृढ़ता, तुलसीदास के मानस (रामायण) से युद्ध
और नरसी के घर से पराई पीड़ लाया है। टालस्टाय से प्रेम के अतिरि
(प्रेम से दूर) केवल युद्ध गीत और अमर वाणी ने इसे राम नाम दिया है
इसने (पुनीत आज) तिल-तिल कर के इन महापुरुषों के युग-युगों से कितने
आदर्श इकट्ठे किये हैं। हे मेरे देश काल, आज का यह पुनीत आज तेरा
नहीं है युग-युगों का है।

शब्दार्थ—विमुक्त=खुला—छूटा हुआ, अकाम=निष्काम—इच्छा
बिना, पाञ्चजन्य=वह शंख जिसे महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण ने बजा
था, अनूठी=बेजोड़, स्वेच्छा=अपनी इच्छा, मृत्यु वरना=मौत को वर
करना अर्थात् मौत को अपनाना, परमार्थ भाग=मुक्ति का हिस्सा, शाश्वत=
अमर—सदा रहने वाला, गिरा=वाणी।

सूखे आँसू

[बालकृष्ण शर्मा 'नवीन']

संकेत—यह कविता 'नवीन' जी की कविताओं में से ली गई। कवि इसमें वेदना या कसक को ही दुखियों का वरदान मान कर कहता है—किसी ने इस कसक को मेरे जीवन से अलग किया है ? आज मेरे कलेजे की तड़प धीमी पड़ गई है और मेरा दिल सुनसान हो गया है। इस वेदना का रस सूख कर कहाँ चला गया, इस वेदना के बन की कोयल भी न मालूम किस बाँस के बन में छिप गई है ? इत्यादि।

भाव—कलेजे की तड़प क्यों धीमी पड़ गई और क्यों जी सुनसान जैसा हो गया है। मेरी आँख के अस्पष्ट (धुंधले) विचारों की लड़ी किसने तोड़ दी है और मेरा वह दुःख रूपी धन कहाँ खो गया ? इस पीड़ा या मुसीबत का रस सूख कर किस सरोवर में जाकर गायब हो गया है और इस जंगल की कोयल कूक कर किस बाँस के बन में सो गई है ! हमें सिसकते रहने में ही मज़ा मिलता रहा और कसक की उस पीड़ा की चाह से हम जैसे मुसीबत में पले हुओं का हृदय रूपी कमल खिलता रहा है। हम अपनी चाह के दर्द को दिल में लगाते रहे हैं पर हाय मेरी वह दर्द गई कहाँ ? हाय ! किस निर्दय ने मेरी दर्द-भरी आँखों में पट्टी बाँध दी है। हे चंचल आँखों के बिन्दु अर्थात् आँसू तुम अब कहाँ हो ? यह आँखों का चश्मा सूख रहा है देख लो।

क्यों कलेजे की तड़प धीमी पड़ी,
आज दिल सुनसान सा क्यों हो गया ?
आँख के अव्यक्त भावों की लड़ी,
तोड़ दी किसने ? कहाँ धन खो गया ?
इस विषमता की सरसता सूख कर—
किस सरोवर में तिरोहित हो गई ?

अर्थ—मेरे कलेजे की तड़प धीमी क्यों पड़ गई ? अर्थात् मेरे हृदय का दु कस क्यों हो गया ? इसी कारण आज मेरा दिल भी सूना-सूना क्यों हो र है। मेरी आँख की धीमी विचारों की लड़ी किसने तोड़ दी है ? पीड़ा समय जो हृदय के भाव आँखों के मार्ग में पहुंचे थे आज उस पीड़ा के गा होने पर विचारों की वह शृंखला भी क्यों टूट गई ? मेरा यह धन कहाँ गया है ? इस विषमता अर्थात् विपत्ति का जो आनन्द मुझे मिल रहा था सूख कर न मालूम किस सरोवर में जाकर गायब हो गया है।

इस विपिन में कुहुमिनी कूक कर—
किस निनादित वेणु वन में सो गई ?
सिसकते में ही मजा मिलता रहा,
कसक की उस वेदना की चाह से—
हाय ! पर वह दर्द मेरा क्या हुआ ?
किस निठुर ने हाय ! पट्टी बाँध दी ?
लोल लोचन बिन्दु तुम अब हो कहाँ ?
सूखता है यह विपट—लो—देख लो !

अर्थ—इस जंगल में वह कोयल कूक कर किस शब्द करते हुए बाँसों बन में जाकर सो गई है ? अर्थात् इस कष्ट-भरे हृदय की वह पुकार अब छिप गई है ? हमें सिसकियाँ भरने में ही मज़ा मिलता रहा। अर्थात् पीड़ा कराहने में ही हमें आनन्द मिलता था।। पीड़ा की इस कराह द्वारा ही हम मुसीबत-ग्रस्तों का हृदय रूपी कमल खिलता रहता था। (हमें दुःख में ही प्र न्नता मिलती थी) हमने चाह से दर्द को दिल से लगाया था, पर हाय ! मे वह दर्द कहाँ चली गई ? हाय ! किस कठोर ने मेरी उस दर्द पर पट्टी बाँ दी है। अर्थात् किस निर्दय ने मेरे से उस दर्द को छीन लिया है ? हे मेरी चं आँखों के बिन्दु (आँसू) ! अब तुम कहाँ हो ? मेरा यह हृदय का चश्मा सू रहा है सो देख लो।

शब्दार्थ—अव्यक्त=धीमा—धुँधला, विषमता=दुःख-दर्द, सरसता=मज़ा, तिरोहित=ग़ायब, निनादित=शब्दायमान—शब्द करते हुए, वेणु-वन=बाँसों का जंगल, सिसकते=सिसकियाँ भरते—रोते, कसक=पीड़ा, विपन्न=मुसीबत में पड़ा हुआ, लोल=चंचल, लोचन=आँख।

जूठे-पत्ते

संकेत—यह कविता श्री नवीन जी की रचनाओं से ली गई है। इसमें कवि ने अँग्रेजों के शासन-काल में जूठे पत्ते चाटने वाले भारती भिखारियों का चित्र खींचते हुए न्याय-कर्त्ता भगवान् को भी उलाहना दिया है कि वे भी अपने स्वरूपों की इस दुर्दशा पर तर्स नहीं खाते। सच-मुच इस युग में जगपति भी राख का ढेर हो गया है। अगर उसका अस्तित्व होता तो उसके स्वरूप की यह दशा न होती। अन्त में कवि मानव को चेतना देता हुआ कहता है कि मानव स्वयं भगवान् है, इसलिए उसे अपने स्वरूप को पहचान कर इस अत्याचार का अन्त करना चाहिये।

भाव—क्या तुमने मनुष्य को मनुष्य के आगे हाथ पसारते हुए तथा उसकी आँखों के आँसू देखे हैं, अगर ऐसा देखते हो तो तुम्हें विप्लव-कारी (आन्दोलन-कर्त्ता—(Revolutioanary) कोई नहीं कह सकता। इतना देख कर भी तुम कहते हो कि तुम विप्लव-कारी नहीं। तब तो तुम पत्थर हो या बड़े अत्याचारी हो। ऐसा देखते हुए भी जो तुम चुप हो। मैंने जिस दिन मनुष्यों को लपक कर जूठे पत्ते चाटते हुए देखा था, उसी दिन मैंने सोचा था कि इस सारी दुनिया को आग क्यों न लगादूँ? यह भी सोचा था कि जगपति (ईश्वर) का गला क्यों न घोंट दूँ जिसने अपने स्वरूपों की यह दुर्दशा (Hateful)

और विकृत (खराब) रूप कर रखा है। अरे जगपति ! वह कहाँ ? वह सदियों से राख की ढेरी बन चुका है। नहीं तो समानता स्थापन करने इतनी देरी क्यों लगती ! हे मानव ! तू परमात्मा का आश्रय छोड़, तू स्वयं जगपति है। अगर तू जूठे पत्ते चाटने लगा तो तुझ पर लानत तथा थू-थू। तेरा यह रूप कैसा दलित, डरावना और भयंकर बना है, तुम्हें याद नहीं कि तू चिर-सुन्दर, नया और प्रलयकारी है। तू अब हाथ से भिक्षा-पात्र छोड़ दे तेरे स्नायु (Nerves) बड़े बलवान् हैं। जरा अपनी ताली बजा तो सही। ऐसा लगेगा जैसा अभी प्रलय की नींद से उठा है। अरे शक्ति के अखण्ड भण्डार (कभी न नष्ट होने वाले शक्ति के खजाने) भिखमंगे ! तू पतित, मजलूम और चिर-दोहित (जिसे देर से चूसा जा रहा हो) नहीं है। तू तो शक्ति का भण्डार है। अरे नींद में खोये हुए, अब तू जाग। प्राणों को तड़पाने वाली हुंकार (गर्जना—दहाड) जल तथा थल (जमीन) में भर दे और उन अत्याचारों के तूफान को शीघ्र समाप्त कर दे। अगर तुझे भूखा देख कर संसार के लोगों के आँखों में आँसू आजायें तो तू उन्हें कहदे कि हमें रोने वाले मनुष्यों की भाँति जरूरत नहीं है। अगर तेरी भूख और जहालत से दुनिया के क्रोध की आग न भड़क जाये तो फिर मैं समझूँगा कि सारी दुनिया कायर (डरपोक) और निर्बल हो गई है।

—कैसा बना रूप यह तेरा, घृणित, दलित, विभत्स, भयंकर,
नहीं याद क्या तुझ को ? तू है चिर-सुन्दर, 'नवीन' प्रलयंकर।
भिक्षा-पात्र फेंक हाथों से, तेरे स्नायु बड़े बलशाली,
अभी उठेगा प्रलय नींद से, जरा बजा तू अपनी ताली।

अर्थ—तेरा यह रूप कैसा बना है, यह तो तेरा रूप घृणा का पात्र (Hateful) दलित (कुचला हुआ) डरावना और भयंकर है। तुम्हें याद नहीं कि तू चिर-सुन्दर, नया और प्रलयकारी है। इसलिए भिक्षा-पात्र हाथों से छोड़, तेरी रगों में बड़ा बल है। अभी तू जब ताली बजाएगा तो ऐसा लगेगा जैसा कि प्रलय की नींद से उठा है।

ओ भिखमंगे, अरे पतित, तू, ओ मजलूम, अरे चिर-दोहित,
तू अखण्ड भण्डार शक्ति का, जाग अरे निद्रा सम्मोहित।
प्राणों को तड़पाने वाली, हुँकारों से जल-थल भरदे,
अनाचार के अम्बारों में अपना ज्वलित पलीता धर दे।

अर्थ—ओ भिखारी! अरे पतित (गिरे हुए), ओ मजलूम (पद-दलित) अरे चिर-दोहित (देर से चूसे गए) तू अनन्त शक्ति का भण्डार है। अरे नींद में मस्त हुए, तुम अपनी हुँकारों अर्थात् दहाड़ों से जल और जमीन दोनों भर दो। और अत्याचार के ज्वार-भाटों में आग की जलती हुई लपट लगा दो। अर्थात् ऐसी घोर-गर्जना करो कि अत्याचार शोषण आदि सब नष्ट हो जायें।

भूखा देख तुझे गर उमड़ें, आँसू आँखों में जग जन के,
तो तू कह दे नहीं चाहिये, हम को रोने वाले जनखे।
तेरी भूख जहालत तेरी, से यदि उमड़ न सके क्रोधानल,
तो फिर समझूँगा कि हो गई, सारी दुनिया कायर निर्बल॥

अर्थ—तुझे भूखा देखकर अगर संसार के लोगों की आँखों में आँसू भर आयें तो तुम उन्हें कह दो कि हमें रोने वाले मनुष्य नहीं चाहियें। तेरी भूख और जहालत (अज्ञान—नादानी) से यदि क्रोध की आग न पैदा हो सके तो मैं समझूँगा कि सारी दुनिया कायर (डरपोक) या निर्बल हो गई है।

शब्दार्थ—विप्लव-कारी=उपद्रव मचाने वाला, टेंटुआ=गला, दलित=कुचला हुआ, विभत्स=डरावना, दोहित=चूसा गया, अखण्ड=कभी टूटने वाला नहीं—अटूट, निद्रा सम्मोहित=नींद की मस्ती में पड़ा हुआ, अम्बार=ज्वार-प्रवाह, पलीता=जलती हुई कागज की नली, जनख=जन—मनुष्य, जहालत=नासमझी—नादानी, क्रोधानल=क्रोध की आग, कायर=डरपोक, निर्बल=बलहीन—ताकत के बिना।

ये गजरे तारों वाले

[डा० रामकुमार वर्मा]

संकेत—यह कविता डा० रामकुमार वर्मा की रचना 'अंजलि' से ली ग
है। इसमें कवि रजनी-बाला (रात रूपी लड़की) से कहता है कि वह अप
तारे रूपी गजरों को संसार के आगे बेचने के लिए न ले जाये क्योंकि क
उनका पारखी कोई नहीं है। उस (रात को) चाहिए कि इन गजरों को झ
के पानी से धोकर उन्हें लहरों को चूमने दे। अगर सवेरे तक संसार उन्हें
खरीदे तो फूलों पर ओस के कतरों के रूप में वहीं फैला देना।

भाव—हे रजनी बाले (रात रूपी लड़की)! इस रात में सज-धजकर
तारों वाले गजरों को कहाँ बेचने ले जा रही हो। इसे चाहने वाले तो सो
हैं, कौन अब खरीदेगा? अब इन्हें कुम्हलाने मत दो। इन्हें झरने के निर्म
जल में धो लेना। अगर लहरें इन्हें चूम लें तो बुरा न मनाना, इन्हें लहरों
ही प्रतिबिम्बित (Reflected) होने दो और "लो मेरे तारों वाले गज
झरने के स्वर में यह गाते रहना। अगर प्रातः काल तक कोई तेरे से इन्हें मो
न ले तो फूलों पर ओस-बिन्दु के रूप में इन्हें बिखरा देना।

इस सोते संसार बीच, जगकर सजकर रजनी बाले!
कहाँ बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारों वाले?
मोल करेगा कौन, सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो, सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी॥

अर्थ—हे रजनी बाले! इस सोते हुए संसार में जगकर और सज-धज कर
तारों वाले गजरे कहाँ बेचने के लिए ले जा रही हो? अर्थात् इस सुनसान
तारों का अमूल्य प्रकाश किसको देने जा रही हो? यहाँ तो सब सोए पड़े हैं।
तेरे सुन्दर प्रकाश और शोभा की कीमत आँकेगा? इनका मोल कौन करेगा

मोल करने वाली आँखें तो सब सोई पड़ी हैं। इसलिए इस सन्नाटे के अन्दर अपना इन प्यारी निधियों (धन-दौलत) को मत कुम्हलाने दो ? अगर इन्हें साथ लेकर बेचने निकलोगी तो भटकने के कारण ये कुम्हला जायेंगे।

निर्झर के निर्मल जल में, ये गजरे हिला-हिला धोना
होने दो प्रतिबिम्ब विचुम्बित, लहरों ही में लहराना।
लो मेरे तारों के गजरे, निर्झर स्वर में यह गाना॥
यदि प्रभात तक कोई आकर, तुमसे हाय न मोल करे।
तो फूलों पर ओस रूप में, बिखरा देना सब गजरे॥

अर्थ—इन गजरों को झरने के जल में हिला-हिलाकर धोना। अर्थात् इस गुनसान में अपने तारों के प्रकाश को झरनों की लहरों पर ही डालते रहना, उससे विचित्र शोभा पैदा होगी। अगर उमड़ती हुई लहर इस प्रकाश को चूम ले तो बुरा नहीं मनाना। क्योंकि सोए संसार के आगे मोल करने के बजाय इन तारों के गजरों को प्रकृति की गोद में अर्पित कर देना अधिक शोभा देगा। इन्हें लहरों में प्रतिबिम्बित होने देना चाहिए जिससे ये लहरों में ही लहराते (तैरते-झूलते) रहें। और "मेरे तारों के गजरे लो" झरने के स्वर में यही गाते रहना। अगर सवेरे तक संसार इनका मोल न करे तो फूलों पर ओस के कतरों के रूप में इन्हें बिखेर देना। अर्थात् संसार न ले तो तारों की शोभा वाले ओस के कतरे फूलों पर बिखेर कर उनका रूप प्रकट कर देना।

शब्दार्थ—रजनी = रात, बाला = लड़की, निधियाँ = धन-दौलतें, प्रतिबिम्बित = जल में किसी की परछाई (Reflection), प्रभात = सवेरा।

———

परिचय

संकेत—यह कविता वर्मा जी की रचना 'चन्द्र किरण' से ली गई है। इसमें कवि संसार को दुःख भरा देखकर झूठी आशा के पीछे भटकते रहना

ठीक नहीं समझता। उसने देखा कि उसके जीवन की साँसें आशा के ताने-बाने बुनती हुई अपने में गुद-गुदाने लगती थी और कभी रोती तथा कभी हँसती थी पर अन्त में उसने कवि को व्याकुलताहीन तथा निश्चल बना दिया। इसलिए कवि तो सुखी है परन्तु संसार सुखी नहीं।

भाव—मैं सुखी हूँ और यह संसार व्याकुल है। इसलिए ये तारे किस आशा के बल पर हर रोज सूने आकाश में निकलते हैं? यह तृष्णा अन्तहीन (Endless) है इसलिए बार-बार बसंत का आना भी व्यर्थ है। (तृष्णा तो फिर भी न मिटेगी) इसी प्रकार अनन्त समुद्र भी बादलों का कुरूप रूप लेकर क्यों अस्थिर हो! और इसी प्रकार उषा भी अनेक बेकार शृंगार (सजावट) कर चुकी है परन्तु उसे भी कुछ नहीं मिला। मेरे जीवन की साँसें अपने में ही लीन होकर कभी रोती रहीं और कभी हँसती रहीं और प्रतिक्षण चलकर भी ये मुझे सुखी और स्थिर बना चुकी हैं।

मैं सुखी और यह विश्व विकल।
तारे किस आशा से प्रतिदिन
शून्य गगन में रहे निकल!

अर्थ—मैं सुखी हूँ और यह संसार व्याकुल है। तो फिर ये तारे हर रोज किस आशा को लेकर सूने आकाश में निकलते है? अगर यह संसार दुःखी है तो तारे इससे निराश न होकर क्यों हर रोज सूने आकाश में चमकते रहते हैं? क्योंकि दुःख और निराशा में मनुष्य का जी काम करने को नहीं चाहता।

इस तृष्णा का पाया न अन्त,
फिर-फिर क्यों हो कुसुमित बसंत,
बादल का लेकर विकृत रूप!
क्यों अस्थिर हो सागर अनन्त?
उषा, न कोई मिला, कर चुकी,
कितने ही शृंगार विकल।

अर्थ—इस तृष्णा का पार कभी किसी ने नहीं पाया। तो फिर बार-बार बसन्त क्यों फूलता है। बसन्त के बार-बार खिलने पर भी मनुष्य की उसकी

प्रति चाह पूर्ण नहीं हो सकती क्योंकि चाह या आशा का अन्त है ही नहीं फिर चाह पूर्ण न कर सकने के कारण बसन्त का बार-बार खिलना व्यर्थ ही है। इसी प्रकार अनन्त (Endless) सागर तृष्णा के अन्तहीन होने के कारण बादलों का विकृत (कुरूप) रूप क्यों धारण करे ? और क्यों मनचला बने ? उषा (प्रातःकाल) अपने कई शृंगार कर चुकी है परन्तु सब कुछ व्यर्थ ही गाया, इससे उसे कुछ नहीं मिला। अर्थात् इस संसार में यत्न करने पर भी किसी की चाह पूरी नहीं होती। इसी कारण यह संसार दुःखी है।

मेरे जीवन की रेख श्वास,
अपनेपन से ही कर विलास;
होकर अपनी ही परिधि मञ्जु,
रोती-हँसती बन रुदन-हास।
प्रतिपल चल कर भी वह मुझको,
बन चुकी अविकल,अविचल।
मैं सुखी और यह विश्व विकल।

अर्थ—मेरी जीवन श्वासें (साँसें) अपनेपन में (अपने में) ही आनन्द की क्रीड़ाएँ करते हुए और अपनी ही सुन्दर सीमा (Limit) बनकर रोने और हँसने का रूप लेकर कभी रोती हैं और कभी हँसती हैं। अर्थात् मेरा-हृदय अपने में ही आनन्द मनाता हुआ और अपने दायरे के अनुसार रोने हँसने का नाटक खेलकर रोता और हँसता रहता है। इस प्रकार मेरी वे साँसें प्रतिक्षण चलकर भी मुझे सुखी और स्थिर बना चुकी हैं।

शब्दार्थ—विकल=व्याकुल, कुसुमित=खिला हुआ, विकृत=कुरूप—बदसूरत, विलास=आनन्द की क्रीड़ा, परिधि=सीमा (Limit), अविकल=सुखी, अविचल=स्थिर।

———

ओ मेरी जीवन की नौका

[उदयशंकर भट्ट]

संकेत—यह कविता भट्ट जी की रचना 'विसर्जन' से ली गई है। इस कवि जीवन की नौका से कहता है—हे मेरी जीवन की नौका ! लाखों तूफ़ान आकाश तथा पृथ्वी पर उठने पर तू बहती ही चली जा। जीवन में तूफ़ान ही तूफान हैं, अगर कहीं थोड़ा सा लेशमात्र खुशी का है, वह भी अन्त में मृत्यु-रूप बन जाता है, इसलिये हर हालत में तू बहती जा।

भाव—हे मेरी जीवन की नौका ! तू बहती ही चल, यहाँ चारों ओर प्रलय का जल है। नीचे नीला सागर और ऊपर नीला बादल, इसलिये कहीं भी किनारे का पता नहीं है। न तो पतवार है और न पार दीख रहा है। ऊपर घटा उठी है, आँखों में पानी और हृदय में पुरानी आग है तथा तूफानी सागर मिलने दौड़ती आरही है। ऊपर बादल और नीचे समुद्र है इसलिए दोनों स्थान लहरा रहे है। फिर भी तू बहती ही चल। मैं पीछे की ओर देखता हूँ आगे की ओर नाव खे रहा हूँ। इस नाव को पानी की धारा में फेंक कर दोनों माँझी भी भाग गये हैं। इधर आकाश के जल का प्रवाह, उधर समुद्र लहरा रहा है फिर भी हे नौका ! पुराना उत्साह इकट्ठा करके बहती ही चल। मेरी नौका के जीवन ही मौत बन जाता है और मेरे हृदय का उल्लास (खुशी) पिघल कर आँसू बनकर आकाश में बादल की बूँदें बन जाता है और गर्जने लगता है। वही मौत और जीवन भी वही है। केवल रूप का परिवर्तन (Change) है। हे नौका ! मौत के उस पार पल-पल में तेरा जल भरा हुआ है। तू बहती ही चल।

ओ मेरी जीवन की नौका,
बहती चल, बहती चल।

यहाँ किनारे का न पता है,
चारों ओर 'प्रलय जल ।
नीचे नीला उदधि तैरता,
ऊपर नीला बादल ।
यहाँ कहीं पतवार नहीं है,
कहीं दीखता पार नहीं है ।
इस महान् में तू ही अणु है,
अणुकारी कितना बल ?
बहती चल, बहती चल ।

अर्थ—हे मेरी जीवन नौका, तू बहती ही चल । यहाँ तो किनारे का कोई पता नहीं है और चारों ओर प्रलय का जल है । अर्थात् इस जीवन में संकटों और विघ्नों के तूफान ही तूफान छाए हुए हैं, जिन में से उस पार का किनारा नहीं दीखता—इस जीवन को कहाँ पहुँचना है, इसका कोई पता नहीं चलता । ऐसा लगता है जैसे कि नीचे समुद्र लहरा रहा हो और ऊपर नीले बादल छाये हों और बीच में यह जीवन की किश्ती ऐसी डगमगा रही है जिसका न कोई पतवार है और न दूसरे पार का किनारा, अर्थात् यह जीवन इस संसार में असहाय होकर जीवन-संग्राम लड़ रहा है, इसका अन्त कहाँ होगा, कुछ समझ नहीं आता । हे नौका ! इस महान् जीवन के समुद्र में तू छोटी सी है, अरी, छोटी वस्तु में कितना बल होता है ।

देख घटा उस ओर उठी है,
आँखों में भर पानी ।
ऊपर आँखों में पानी की
भीतर आग पुरानी,
दौड़ी चली आ रही मिलने ।
लिये साँस तूफानी,
ऊपर भी जल नीचे भी जल ।

लहराये नभ और उदधि तल,

देख गगन की छाती में ।
यह चिनगारी, यह हलचल,
बहती चल बहती चल ।

अर्थ—देख, उस ओर से घटा उठी है और आँखों में पानी भर गया है। अरी ऊपर आँखों में पानी भरा हुआ है और नीचे हृदय में पुरानी आग धधक रही है । अर्थात् इस जीवन में विपत्तियों के तूफान आकर आँखों में पानी और हृदय में आग भर देते हैं । उधर से तूफानी साँस भी मिलने के लिए दौड़ी चली आ रही है । एक मुसीबत के साथ दूसरी मुसीबत बँधी हुई चली आ रही है। ऊपर भी जल है, नीचे भी जल है, आकाश और समुद्र दोनों लहरा रहे हैं। अर्थात् चारों ओर मुसीबत ही मुसीबत है । आकाश की छाती पर य चिनगारी और हलचल देखकर तू बहती ही चल ।

मैं पीछे की ओर देखकर,
नाव खे रहा आगे ।
मेरी नाव धार में करके,
दोनों माँझी भागे ।
इधर व्योम के जल-डोरों से,
सिन्धु झनझना जागे ।
यह कैसा तूफान उठा है,
दूने बल से प्रलय जुटा है ।
संचित कर उत्साह पुराना,
एकत्रित कर सम्बल,
बहती चल बहती चल ।

अर्थ—मैं पीछे की ओर देखकर यह जीवन नौका आगे की ओर खे रहा अर्थात् किसी सहायक साथी-संगी की ओर मुड़कर देख रहा हूँ परन्तु कोई दीखता और आगे की ओर अकेला ही इस किश्ती को खे रहा हूँ । मेरी नाव को पानी की धार में छोड़कर दोनों माँझी भाग गये हैं । अर्थात् मुसी में पड़े हुए मुझे अकेले छोड़कर सब साथी-संगी भाग गये हैं ! इधर आका

जल-प्रवाह से समुद्र भी जोर-शोर से लहरा रहा है। यह कैसा तूफान उठा है जिस में दूना बल लेकर प्रलय भी उमड़ आया है ? संकटों का जम घट इकट्ठा होकर चला आया है, जिस में दूना सर्वनाश दीख रहा है।

हे जीवन नौका ! तू अपना पुराना उत्साह (हिम्मत) तथा सहारा इकट्ठा करके बहती ही चल। कठिनाइयों में पड़कर भी हिम्मत तथा जिस किसी प्रकार सहारा ढूँढकर आगे ही बढ़ती चल।

ओ जीवन मेरी नौका का,
वही मृत्यु बन जाता।
मेरा ही उल्लास हृदय का,
पिघल अश्रु हो जाता।
वही पवन वारिद की बूँदें,
बन नभ में घहराता।

वही है मरण वही जीवन,
रूप का केवल परिवर्तन।
मरण पार ही तो तेरा है,
देख भरा जल पल-पल,
बहती चल बहती चल।

अर्थ—मेरी इस जीवन-नौका का जो जीवन है, वही मौत बन जाता है। मेरे हृदय की खुशी पिघल कर आंसू बन जाती है और आकाश में हवा तथा पानी की बूँदें बनकर गर्जने लगती है। वही मौत और वही जीवन है। केवल रूप की तबदीली मात्र है। हे जीवन नौका ! देख, मौत के उस पार पल-पल में तेरा ही जल भरा हुआ है। अर्थात् मरने के बाद भी यह जीवन-संग्राम समाप्त होने वाला नहीं। इसलिए बहती ही चल।

शब्दार्थ—उदधि=समुद्र, अणु=छोटा—छोटी, व्योम=आकाश, झनझना=शब्द करके—गर्जन करके, संचित=इकट्ठा, उल्लास=खुशी, वारिद=बादल, घहराता=गर्जता।

भविष्य है बुला रहा

संकेत—यह कविता भट्ट जी की रचनाओं में से ली गई है। इस में कवि मनुष्य को मनुष्यता का पाठ पढ़ने के लिए प्रेरणा देता हुआ युग-गति के साथ कदम मिलाकर चलने के लिये कहता है।

भाव—हे मानव ! चलो, हम मिलकर आगे बढ़ें। हमें भविष्य बुला रहा है। और ऊँची चोटी पर खड़ा मानव भी पुकार रहा है। दिन, रात तथा प्रातःकाल सब चल रहे हैं और मनुष्य की प्यास लम्बे रास्ते को तय करती हुई चली जा रही है। यह मनुष्य कभी नहीं रुका यह आगे बढ़ने के लिये बिलबिला रहा है। घड़ी-घड़ी बदलती हुई नयी क्रान्ति को जन्म दे रही है। वह मनुष्य नहीं प्रेत है जो मनुष्य को इस समय भुला रहा है। घने बादल घिर आए, आकाश फटे, अँधेरा मिटा और सुन्दर रास्ता भी जगमगा उठा है। तुम आगे बढ़ो। स्वाभाविक (Natural) स्वर्ग आगे आ रहा है। मनुष्य विशाल होता है। तू मनुष्य बन, तू संसार के कल्प वृक्ष का अमर (अमिट) फूल है। संसार का रोम-रोम तुम्हें यही सुना रहा है।

चलो बढ़ें बढ़ चखें, भविष्य है बुला रहा !
सुदूर श्रृंग पर खड़ा मनुष्य है बुला रहा।
दिवस चले, निशा चली, रुकी नहीं उषा चली।
महान् पन्थ पार कर मनुष्य की तृषा चली।
न रुक सका मनुष्य यह, मनुष्य कुलबुला रहा।
घड़ी-घड़ी बदल रही, घड़ी-घड़ी उगल रही।।
नवीन क्रान्ति, क्रान्ति क्रूर बिजलियाँ मचल रही।
मनुष्य यह न प्रेत जो, मनुष्य को भुला रहा।।

अर्थ—चलो आगे बढ़ें, स्वाद चखें, भविष्य हमें बुला रहा है और दूर चोटी पर खड़ा मनुष्य भी बुला रहा है। अर्थात् नवीन युग की अग्रगामी (Advanced) उन्नति की चोटी पर आज मनुष्य खड़ा है और हमें भी उसी ओर आने के लिये इशारा कर रहा है। इसी भाँति इस प्रगति के प्रवाह में रात-दिन

और प्रातःकाल आदि चल रहे हैं। कोई रुक नहीं रहा। मनुष्य की प्यास लम्बा रास्ता तय करके चल रही है। मनुष्य रुका नहीं बल्कि चलने के लिये कुलबुला रहा है। घड़ी-घड़ी बदलती जा रही है, घड़ी-घड़ी नयी क्रान्ति (Revolution) को जन्म दे रही है और क्रूर (Evil) बिजलियाँ छटपटा रही हैं। अर्थात् नया युग अपने यौवन में है, जब प्रकृति के सब पहलू मचलते हुए दिखाई पड़ रहे हैं तो वह मनुष्य नहीं प्रेत है जो मनुष्य को इस समय भुला रहा है।

सघन घिरे, गगन फटे तिमिर हटा, कुहर छटे।
प्रशस्त पन्थ जगमगा उठा, विहंग भी जुटे।
बढ़ा कदम न मुड़, न रुक, निसग स्वर्ग आ रहा।

अर्थ—सघन (घने) वन घिर गए हैं, आकाश फटे हैं, अँधेरा हट गया है और रंध्र-सुराख भी छट गए हैं अर्थात् अत्यन्त गुप्त तथा अँधेरी कोठरियाँ भी प्रकाश में आ गई हैं। श्रेष्ट (Superior) रास्ता प्रकाशित हो उठा है और पंछी भी कल-कूजन में जुट गए है। तुम कदम बढ़ाओ, पीछे मत मुड़ो और न रुको। आगे स्वाभाविक स्वर्ग आ रहा है। अर्थात् हर अवस्था में आगे ही बढ़ो वहीं स्वर्ग खड़ा है।

मनुष्य है, मनुष्य बन, मनुष्य है विशालतम।
कि विश्व कल्प वृक्ष का मनुष्य तू अमर-कुसुम॥
प्ररोम-रोम विश्व का यही तुझे सुना रहा।

अर्थ—मनुष्य इस संसार में तू भी मनुष्य बन क्योंकि मनुष्य अति विशाल है इसलिये तू भी अति विशाल मनुष्य बन। तू इस संसार रूपी कल्प वृक्ष का अमर फूल है, संसार का रोम-रोम यही कह रहा है।

शब्दार्थ—तृषा=प्यास, क्रान्ति=हलचल (Revolution), सघन= घने, कुहर=छेद—सुराख, प्रशस्त=प्रशंसित (Appreciated), कल्प वृक्ष =स्वर्ग का वह पेड़ जो मनुष्य को मुँह-माँगी मुराद देता है, कुसुम=फूल।

सिपाही

[रामधारी सिंह 'दिनकर']

संकेत—यह कविता दिनकर जी की रचना 'हुँकार' से ली गई है। इसमें कवि एक देश-भक्त सैनिक (सिपाही) के जीवन की झलक चित्रित करता है। जिसमें सैनिक कह रहा है कि उसने जीवन के ऐशो आराम से सम्बन्ध तोड़ कर केवल अपने देश की रक्षार्थ प्राणों की बलि चढ़ाना ही सीखा, ऐसा करने के पश्चात् प्रकृति के हर पहलू में उसकी आत्मा झंकृत हो उठती है। और यश की सुगन्धि फैल जाती है।

भाव—सैनिक कहता है—मुझे स्त्री, पुत्र, यश, सम्मान आदि की ममता कभी नहीं हुई। जीवन की चहल-पहल को छोड़ कर केवल सेनापति के इशारे पर मर मिटना ही वह जानता है। गली की ठीकरी तक उसे भुलाती है। वह सोचता है कि जीते जी ही वह लड़ मरे तो अच्छा है। वर्ना मरने के बाद किसी को याद नहां आती। मेरी मौत इतिहास में अमर होने के लिये नहीं है। क्योंकि संसार छोड़ देने पर लोग उसे जल्दी ही भुला ही देंगे। संसार भले ही उसे भूल जाये पर इससे क्या? उसे तो सेवा-धर्म निभाना है। एक दिन आयेगा जब वह आपने विजय-रूपी वृक्ष को विकसित हुआ देखेगा और उसके फूलों की लाली में अपने खून की लाली के दर्शन करेगा। वही लाली हर प्रातः काल उसे जगाएगी और सायँकाल माँ (मातृभूमि) को नमस्कार करती हुई छिप जायगी। स्वर्ग में जाकर भी वह किसी दिन बिजली बन कर पुनः इस धरती पर उतर आएगा। वह फूलों की पंखड़ियों में खिलेगा, और राह चलते हुए वीरों को देख कर अपने स्थान पर (फूल पर) ही चिन्तन करेगा। इसी प्रकार कभी वह धमनियों का गर्म वेग बनेगा, कभी चरणों की मिट्टी में बैठ कर जय-जय बोलेगा। दूसरे जन्म में वह महाभारत की ध्वजा (झण्डा) पर

हनुमान बन कर गरजेगा । परन्तु संसार की ऐसी रीत कहाँ कि वह ऐसे वीरों के बारे में एक गीत ही लिखे या उस पर एक फूल ही चढ़ा दे । किन्तु हे कविते ! जंगल में फूल का मुरझाना देख लो जैसे वह व्यर्थ नहीं होता इसी प्रकार शहीद की समाधि पर दो आँसू कण बरसाना व्यर्थ नहीं जायगा ।

जग भूले, पर मुझे बस, सेवा धर्म निभाना है ।
जिसकी है यह देह उसी में इसे मिला, मिट जाना है ॥

अर्थ —संसार भले ही मुझे भूल जाये परन्तु अपना सेवा-धर्म निभाना है । मुझे युद्ध में भाग ले कर अमर होकर मातृभूमि की रक्षा करनी है, भले ही संसार उसे भूल जाये ।

विजय बिटप को विकच देख जिस दिन तुम हृदय जुड़ाओ,
फूलों में शोणित की लाली कभी समझ क्या पाओगे ?
वह लाली हर प्रात क्षितिज पर, आकर तुम्हें जगाएगी,
सायंकाल नमन कर माँ को तिमिर बीच खो जायेगी ।

अर्थ —सेनानी कहता है—हे मित्र, मेरे विजय रूपी पौधा जब तुम खिला हुआ देखोगे और उसे प्यार करोगे तो उसके फूलों की लाली में मेरे खून (जो मैंने मातृभूमि की रक्षा के लिये दिया था) की लालगी क्या तुम समझ पाओगे ? अर्थात् मेरे विजय रूपी पौधे में जो फूल लगेंगे, उनकी लालगी मेरे ही खून की लालगी होगी । वही लालगी हर सवेरे क्षितिज पर आकर तुम्हें जगाया करेगी और सायंकाल में माँ की वन्दना करके अन्धकार के बीच छिप जाया करेगी । अर्थात् मेरे रुधिर की लालिमा पहले उस पौधे के फूलों में देखोगे, फिर हर प्रात : और सायं की लालगी में उसके दर्शन किया करोगे ।

देव करेंगे विनय किन्तु क्या स्वर्ग बीच रुक जाऊँगा ।
किसी रात चुपके उल्का बन, कूद भूमि पर आऊँगा ॥

अर्थ —शहीद हो कर जब मैं स्वर्ग में पहुँचूँगा तो वहाँ देवता मेरी स्तुति करेंगे किन्तु क्या मैं स्वर्ग में रुकूँगा ? मैं तो वहाँ न ठहर कर बिजली के रूप में जमीन पर कूद कर यहाँ आ पहुँचा । अर्थात् स्वर्ग सुख के स्वार्थ (Selfishness) में न पड़ कर फिर इसी धरती पर आकर माँ की सेवा करूँगा ।

कविते ? देखो विजन विपिन में वन्य कुसुम का मुरझाना।
व्यर्थ न होगा इस समाधि पर दो आँसू-कण बरसाना ॥

अर्थ—हे कविते ? जंगल के फूल का सुनसान जंगल में मुरझा जाना देख लो। वह इस अवस्था में मुरझा कर भी दुनिया के आगे अपना उदाहरण रख जाता है, इसलिये जिस प्रकार उसका मुरझाना व्यर्थ नहीं जाता इसी प्रकार शहीद की समाधि पर दो आँसू बहाना भी बेकार नहीं जायगा अर्थात् कविता के दो पद जिनमें शहीद की शहीदी पर आँसू बहाए गए हैं, व्यर्थ नहीं जायेंगे। उस रूप में भी माँ की सेवा होगी।

शब्दार्थ—वनिता=स्त्री, ममता=मोह—प्रेम, ख्याति=यश, विभव=धन-दौलत, सेनापति=जरनल—कमांडर, विकच=खिला हुआ, शोणित=खून, तिमिर=अँधेरा, उल्का=बिजली, वृन्त=फूल की डंडी, जिस पर फूल लटका रहता है, धमनी=नस, अनी=सेना—फौज, विपिन=जंगल।

भारतभूषण

जलियाँवाला बाग में वसन्त

[सुभद्रा कुमारी चौहान]

संकेत—यह कविता श्री चौहान जी की रचना 'मुकुल' से ली गई है। इसमें कवयित्री जलियाँवाला बाग के गोली-काण्ड का चित्र उपस्थित करती है, जो सन् १९१९ ई० में हुआ था। देश के स्वतन्त्रता-प्रेमियों के एक जलसे में अँग्रेज सेनापति मि० डायर ने दनादन गोली चला दी थी और बच्चे, बूढ़े, नौजवान सैकड़ों की संख्या में कीड़ों-मकोड़ों की तरह गोली का शिकार हुए थे। आज कवियत्री वसन्त से कह रही है कि हे वसन्त! उस बाग में चुप-चाप होकर आना, वहाँ मातम छाया हुआ है। मरे हुए बच्चों पर कलियाँ, बूढ़ों पर मुर्झाए फूल तथा जवानों पर मन्द सुगन्धित फूल बरसाना।

भाव—यहाँ (जलियाँवाले बाग में) कोयल नहीं कऊए शोर मचाते हैं, काले-काले कीड़े भौंरों का भ्रम पैदा करते हैं, कलियाँ काँटों के साथ अध-खिली हैं, और पौधे रूखे-सूखे अथवा मुर्झाए फूलों वाले हैं। हाय! यह प्यारा बाग खून से रंगा गया है। हे प्यारे बसन्त! आओ पर धीरे से आना, यह शोक की जगह है, यहाँ शोर नहीं मचाना, यहाँ तुमने वायु को धीमी चाल चलाना, दुःख की आहों को साथ नहीं उड़ा ले जाना। कोयल को चाहिये कि वह रोने का राग गाए और भौंरा दुःख की कथा सुनाए। तुम अपने साथ ऐसे पुष्प लाना जो ज्यादा सजीले (सजावटी) न हों और मन्द खुशबू वाले तथा कुछ-कुछ गीले हों। यहाँ उन शहीदों की याद में थोड़े से बिखरा देना, किन्तु उन्हें उपहार के रूप में मत लाना। यहाँ कोमल बालक गोली खा-खा कर मरे थे, उन पर थोड़ी सी कलियाँ गिरा देना, जो आशा-भरे परिवार इस गोली-काण्ड में बलि चढ़े थे उन पर अधखिली कलियाँ चढ़ा कर तथा उनकी याद में ओस के आँसु गिरा देना, गोली खाकर जो वृद्ध तड़प-तड़प कर मरे थे उन पर

सूखे फूल गिरा देना, यह सब कुछ करना परन्तु धीरे से आना, शोर नहीं मचाना क्योंकि यह शोक का स्थान है।

यहाँ कोकिला नहीं काक हैं शोर मचाते ।
काले-काले कीट भ्रमर का भ्रम उपजाते ।।
कलियाँ भी अध-खिली मिली हैं कण्टक कुल से ।
वे पौधे वे पुष्प शुष्क हैं अथवा झुलसे ।।

अर्थ—जहाँ कोयल नहीं कऊए शोर मचाते हैं, काले-काले कीड़े भौंरों का संदेह पैदा करते हैं। अर्थात् काले कीड़े भौंरों जैसे लगते हैं, कलियाँ भी अध-खिली होकर काँटों के साथ मिली हुई हैं और वे पौधे तथा वे सूखे और मुर्झाए हुए फूल सब हमें इस बाग में दिखाई दे रहे हैं।

परिमल-हीन पराग दाग-सा बना पड़ा है ।
हा ! यह प्यारा बाग खून से सना पड़ा है ।।
आओ प्रिय ऋतुराज ! किन्तु धीरे से आना ।
यह है शोक स्थान यहाँ मत शोर मचाना ।।

अर्थ—खुशबू के बिना पराग (फूलों के अन्दर का सुगन्धित पौडर) भी हृदय के दाग जैसा बना हुआ है। हाय ! यह प्यारा बाग खून से रँगा हुआ है। हे प्यारे बसन्त ! आओ, किन्तु धीरे से आना, क्योंकि यह शोक का स्थान है, यहाँ शोर नहीं मचाना।

वायु चले पर मन्द चाल से उसे चलाना ।
दुःख की आहें संग उड़ा कर मत ले जाना ।।
कोकिल गावे ! किन्तु राग रोने का गावे ।
भ्रमर करे गुंजार कष्ट की कथा सुनावे ।।

अर्थ—अगर वायु चले तो उसे मन्द (धीमी) चाल चलाना परन्तु उस बाग में जो दुःख की आहें हैं उन्हें वायु उड़ा कर न ले जाये, उन्हें वहीं पर रहने देना, कोयल गाए तो रोने का गाए और भौंरा कष्ट की कथा

सुनाए। अर्थात् उस बाग में सैकड़ों देश-भक्तों की बलि लगी थी, वह शोक का स्थान है, इसलिए वहाँ कोई भी खुशी नहीं करनी चाहिये।

लाना संग में पुष्प, न हों वे अधिक सजीले।
हो सुगन्ध भी मन्द, ओस से कुछ-कुछ गीले॥
किन्तु न तुम उपहार-भाव आकर दर्शाना।
स्मृति में पूजा-हेतु यहाँ थोड़े बिखराना॥

अर्थ — पुष्पों को साथ लाना परन्तु वे अधिक सजे हुए अर्थात् अधिक खिले तथा सुगन्धित नहीं होने चाहियें, उनकी सुगन्धि धीमी और वे कुछ-कुछ गीले होने चाहियें। किन्तु उन पुष्पों को तुमने वहाँ उपहार (भेंट—तोफा,) के रूप में नहीं दिखलाना। केवल उन शहीदों की यादगार और पूजा के लिए थोड़े बिखरा देना।

कोमल बालक मरे यहाँ गोली खा-खाकर।
कलियाँ उनके लिए गिराना थोड़ी लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार देश से भिन्न हुए हैं॥
कुछ कलियाँ अध-खिली यहाँ इसलिये चढ़ाना।
करके उनकी याद ओस के अश्रु बहाना॥

अर्थ—यहाँ कोमल बालक गोली खाकर मरे थे। उन पर थोड़ी सी कलियाँ गिरा देना। अर्थात् बालकों की जीवन रूपी कलियाँ अभी खिली ही नहीं थीं, कि उन्हें गोली का निशाना बनना पड़ा। अब उनकी यादगार में कलियाँ बिखेरना ही उचित होगा। जो आशाओं से भरे हृदय अर्थात् युवक या प्रौढ़ मरे थे, अपने परिवार (घराने) भी हमारे से अलग हुए थे, उन पर अध-खिली कलियाँ बिखेरना, जैसा उनका जीवन अभी अध-खिला था उसी प्रकार अध-खिली कलियाँ ही उन पर चढ़ाना और उनकी याद करके ओस के आँसू बहा देना।

तड़प-तड़प कर वृद्ध मरे हैं गोली खाकर।
शुष्क पुष्प कुछ वहाँ गिरा देना तुम जाकर॥
यह सब करना किन्तु बहुत धीरे से आना।
यह है शोक-स्थान, यहाँ मत शोर मचाना॥

अर्थ—वृद्ध (बूढ़े) गोली खाकर तड़प-तड़प कर मरे हैं। तुम वहाँ जाकर उन पर सूखे फूल गिरा देना। यह सब करना परन्तु धीरे से आना क्योंकि यह शोक का स्थान है, यहाँ शोर मत मचाना।

राखी की चुनौती

संकेत—यह कविता श्री चौहान की रचना मुकुल से ली गई है। इसमें कवयितृ राखी की चुनौती का वृत्तान्त लिखती है जो चुनौती बहिन की ओर से भाई को दी जाती थी। वहिन भाई को राखी बाँध कर कहती है कि यह उसके हाथों कड़ी पड़ गई है—माता (मातृ-भूमि) के बन्धन तोड़ने की जिम्मेवारी उसी पर है इसी कारण यह रेशम डोर के रूप में उसके हाथ वहिन ने कड़ी डाली है, इसके लिए बन्दी बनो यही है उस राखी की चुनौती।

भाव—जिस प्रकार कि बादल में बिजली और घटा आकाश में नहीं समाती उसी प्रकार आज वहिन फूली नहीं समा रही है। कहीं राखियाँ चमक रही हैं, कहीं बूँदे हैं और कहीं प्यारे पुष्प खिले हुए हैं। पूर्णिमा की चाँद शोभायमान है। वे वहिनें बधाई की पात्र हैं जिनके भाई हैं। मैं बहिन हूँ परन्तु भाई नहीं है। राखी तो है पर कलाई नहीं है, जैसे भादों के बादल हैं पर छाये नहीं हैं। आज यहाँ न खुशी और रोता है। मेरा बन्धु (भाई) माँ की पुकार

सुनकर जेलखाने गया है। मातृ-भूमि की छीनी हुई स्वतन्त्रता को लाने के लिए वह दुश्मन के घर गया हुआ है। मुझे इस बात का गर्व है, परन्तु राखी तो सूनी ही पड़ी हुई है, अगर वह होता दूनी खुशी हो जाती। हम खुशियाँ मना रही हैं, पर वह दुःखी है, इसी से हमारा हृदय घायल है तथा खूनी दर्द दिल में उठ रहा है। मुझे चित्तोड़गढ़ की याद आती है जब माता और बहिन दोनों खड़ी-खड़ी उसे (भाई) को समझाती थीं—कहो भाई, तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है। अगर है तो यह देखो तुम्हारे हाथ राखी पड़ी हुई है। यह रेशम की डोर तुम्हारे हाथ की हथकड़ी है जो बहिन ने डाली है इस प्रण (प्रतिज्ञा) के लिए कि माँ के बन्धन तोड़ने में तुम जरा भी कसर बाकी न रखोगे। तो तुम जाओ कैदी बनो (अपने देश की गुलामी की जंजीरों को काटने के लिये) यही इस राखी की चुनौती है।

मेरा बन्धु माँ की पुकारों को सुनकर के तैयार हो जेल खाने गया है।
छिनी हुई माँ की स्वाधीनता को, वह जालिम के घर में से लाने गया है॥
मुझे गर्व है किन्तु राखी है सूनी, वह होता, खुशी तो क्या होती न दूनी।
हम मंगल मनावें वह तपता है धूनी, है घायल हृदय दर्द उठता है खूनी॥

अर्थ—मेरा बन्धु (भाई) माँ की पुकारों को सुनकर तैयार होकर जेल-खाने में गया है। अर्थात् देश की स्वतन्त्रता के लिये गिरफ्तार हुआ है। वहाँ माँ की छिनी हुई आजादी को लेने के लिये जालिम (दुश्मन) के घर पर गया हुआ है। मुझे इस बात पर गर्व है किन्तु राखी सूनी पड़ी है वह (भाई) आज इस त्योहार में घर पर होते तो कितनी खुशी होती। हम आनन्द-उत्सव (जशन) मनाएँ और वह दुःख की आग में तप रहा है। यही सोच कर मेरा हृदय घायल है और दिल में दर्द खूनी उठ रहा है।

है आती याद मुझे चित्तौड़-गढ़ की, धधकती है दिल में वह जौहर की ज्वाला
हैं माता बहन रोके उसको बुझाती, कहो भाई तुमको भी है कुछ कसाला ?
है तो वदे हाथ राखी पड़ी है रेशम-सी कोमल, नहीं यह कड़ी है।
अजी देखो लोहे की यह हथकड़ी है, इसी प्रण को लेकर बहन ये खड़ी है॥

अर्थ—मुझे चित्तौड़ गढ़ की याद आ रही है और जौहर (पतियों के

लड़ाई में मर जाने पर वीर क्षत्राणियाँ अपनी लाज को दुश्मन के हाथों से बचाने के लिये चिता में जल जाती थीं—इसी को 'जौहर' के नाम से पुकारते हैं) की ज्वाला मेरे हृदय में धधक उठती है। जब माता और बहिन दोनों वीर राजपूत के सामने खड़ी हो जातीं और बहिन कहती—हे भाई, कह दो कि तुम्हें भी कोई कष्ट है, अगर है तो यह तुम्हारे हाथ में राखी पड़ी है। यह कोमल रेशम के समान नहीं है, लोहे की कड़ी है अरे देखो, यह लोहे की हथकड़ी है और इसी प्रतिज्ञा को लेकर बहन खड़ी है—कि यह राखी इसलिये मैंने तुम्हारे हाथ में डाली है कि इसे लोहे की हथकड़ी समझ कर माँ की गुलामी की हथकड़ी को जरूर तोड़ना होगा। इसी प्रतिज्ञा को लेकर बहन तुम्हारे सामने खड़ी है।

आते हो भाई ? पुनः पूछती हूँ—कि माता के बन्धन की लाज है तुमको।
तो बन्दी बनो देखो बन्धन है कैसा, चुनौती यह राखी की है आज तुमको॥

अर्थ—हे भाई ! तुम आते हो ? फिर पूछती हूँ—कि माता के बन्धन (मातृ-भूमि की गुलामी का बन्धन) की लाज तुम्हीं को है। इसलिये कैदी बनो। अर्थात् इस आजादी की लड़ाई में जाकर गिरफ्तार हो जाओ तो फिर देखो यह कैसा बन्धन है। मेरी राखी की यही चुनौती है।

शब्दार्थ—पूनो=पूर्णमाशी—पूर्णिमा, तड़ित=बिजली, घन=बादल, लता=बेल, रुलाई=रोना, जौहर=जिसमें वीर राजपूतनियाँ अपनी अस्मत बचाने के लिये चिता में जल मरती थीं, बन्दी=कैदी।

हमको ऐसे युवक चाहिएँ

[सोहनलाल द्विवेदी]

संकेत—यह कविता श्री सोहनलाल द्विवेदी की रचना 'युगाधार' से ली गई है। कवि इस कविता में ऐसे युवकों के गुणों का वर्णन कर रहा है, जिनकी हमें आवश्यकता है। हमें ऐसे युवक चाहिएँ जिनमें बल, वीरता, बुद्धि, ब्रह्मचर्य का तेज, देश-सेवा, त्याग, सच्ची लगन आदि गुण हों।

भाव— जिनका मुख-मण्डल अधिक तेजी से चमक रहा हो, जिनका शरीर गठित, भुजाओं में बल, हृदय में उत्साह, शक्ति और वीरता हो, जिनकी रगों में देश-प्रेम, वाणी में जय-जयकार और जो अपने देश का संकट दूर कर सकें, हमें ऐसे युवक चाहिएँ। जो रंग-रलियों में न पड़े हों, जिन में धन-दौलत का विराग (उचाट-मन) हो, जिन में अपने गौरव (बड़प्पन) का अभिमान हो, जो सेवा व्रत रखते हों, और जिनका अन्तःकरण दूसरों का दुःख दूर करने के लिये छटपटा रहा हो हमें ऐसे युवक चाहिएँ। जो सदा सचाई के रास्ते पर चलते हों, जिन्हें झूठ से डर हो, कमजोरों के सहायक बनने में बड़े इच्छुक हों, जिन्हें अपने देश के बन्धन देखकर कुछ न सुहाता हो, स्वतन्त्रता की रट और आजादी जिनकी आराधना (तपस्या) हो, जो मातृभूमि पर अपना सिर फूल की भाँति दे सकते हों। हमें ऐसे ही युवक चाहिएँ, जो अपने देश का संकट हर सकें।

ब्रह्मचर्य से मुख मण्डल पर, चमक रहा हो तेज अपरिमित,
जिनका हो सुगठित शरीर दृढ़ भुजदण्डों में बल हो शोभित।
जिनका हो उन्नत ललाट हो निर्बल दृष्टि ज्ञान से विकसित,
उर में हो उत्साह उच्छ्वसित साहस, शक्ति शौर्य हो संचित।
देश-प्रेम से उमड़ रहा हो, जिनकी वाणी में जयजय स्वर,
हम को ऐसे युवक चाहिएँ, सकें देश का जो संकट हर।

अर्थ—जिनके मुख-मण्डल पर ब्रह्मचर्य का बेहद तेज चमक रहा हो जिनका शरीर गठा हुआ और मजबूत, बाहुओं में बल शोभायमान हो, जिनका मस्तक ऊँचा और निर्मल नजर ज्ञान से खिली हुई हो, जिनके हृदय में उत्साह (हिम्मत) ठाठें मार रहा हो तथा साहस, शक्ति (ताकत) और वीरता इकट्ठी हुई हों तथा जिनकी वाणी में देश-प्रेम के द्वारा जय-जयकार उमड़ रहा हो। हमें ऐसे ही युवक चाहिएँ जो देश का संकट हर सकें।

रस विलास के रहें न लोलुप, जिन में हो विराग वैभव का,
अतुल त्याग हो छिपा देश हित, जिन्हें गर्व हो निज गौरव का।
सेवा व्रत में जो दीक्षित हों, दीन दुखी के दुःख से कातर,
पर संताप दूर करने को ललक रहा हो जिनका अन्तर।
बने देश के हित वैरागी, जो अपना घरबार छोड़कर,
हमको ऐसे युवक चाहिएँ सकें देश का जो संकट हर।

अर्थ—जो ऐशो-अशरत के लालची न हों, जिस में धन-दौलत के प्रति विराग हो, जिनके अन्दर अपने देश के कल्याण के लिये अत्यन्त त्याग छिपा हुआ हो, जो सेवा के व्रत की शिक्षा ग्रहण किये हुए हों। दीन-दुखियों के दुःख से दुखी रहने वाले हों, जिनका हृदय दूसरे का दुःख दूर करने के लिये छटपटा रहा हो और जो अपना घर-बार छोड़कर देश के लिये वैरागी बने हों, हमको ऐसे युवकों की आवश्यकता है, जो देश का संकट हर सकें।

सदा सत्य पथ के अनुयायी, जिन्हें अनृत से मन में भय हो,
दुर्बल के बल बनने के हित जिन में शाश्वत भाव उदय हो।
जिन्हें देश के बन्धन लखकर कुछ न सुहाता हो सुख साधन,
स्वतन्त्रता की रटन अधर में, आजादी जिनका आराधन।
सिर को सुमन समझ कर जो अर्पित कर सकते हों माँ पर,
हमको ऐसे युवक चाहिएँ, सकें देश का जो संकट हर।

अर्थ—जो सदा सच्चाई के मार्ग पर चलने वाले हों, जिन्हें झूठ से मन में

डर हो, दुर्बल (कमजोर) का सहारा बनने में जिनके अन्दर भाव (विचार) उत्पन्न होते हों, जिन्हें अपने देश की गुलामी देखकर उसके कष्ट से संसार में और कुछ न सुहाता हो, जिनके होठों पर स्वतन्त्रता की रट तथा आजादी जिनका आराध्य अर्थात् उपासना या लक्ष्य हो, जो अपनी माँ (मातृभूमि) पर अपना सिर फूल की भाँति अर्पित कर सकते हों, हमको ऐसे ही युवकों की आवश्यकता है, जो अपने देश का संकट हर सकें।

शब्दार्थ—अपरिमित=अधिक—ज्यादा, भुजदण्ड=बाजू, उन्नत=ऊँचा ललाट=मस्तक—माथा, विकसित=खिला हुआ, उच्छ्वसित=उछलता हुआ—बढ़ता हुआ, संचित=इकट्ठा, रस-विलास=ऐशो-अशरत, लोलुप=लालची, अतुल=बेजोड़, गौरव=बड़प्पन, दीक्षित=शिक्षित—दीक्षा लिये हुए, दीक्षा=गुरु-मन्त्र, अनुयायी=पीछे चलने वाले, अनृत=झूठ, शाश्वत=सदा रहने वाला।

गीत

संकेत—प्रस्तुत कविता श्री द्विवेदी की कविताओं में से ली गई है। इस में कवि बसन्त की शोभा का वर्णन करता है। बसन्त ऋतु के आने पर प्रकृति में जो नया यौवन आजाता है, इसी का चित्रण इसमें है।

भाव—बसन्त ऋतु आ गई है, नये-नये पत्ते सोने की तरह लाल हो रहे हैं। उन में इन्द्रधनुष की शोभा है और फूल खिले हुए हैं। आँगन लगा हुआ आम का पेड़ कोमल पत्तों से लहलहा रहा है। हर जंगल और उपवन में सुगन्धि के बादल जैसे छा गए हैं, वह देखो मस्ती भरी कोयल ने कैसी आवाज अलापना शुरु की है। तुम कोमल बाजू फैलाकर प्रेम-पूर्वक गले मिलो ताकि इस सूनसान जीवन में सबको बसन्त दीख पड़े।

आई वासन्ती ऋतु आई

स्वर्ण ताम्र लोहित नव पल्लव,
सुर धनु का लेकर श्री वैभव।
खिले, खिली कोमल किसलय ले,
आँगन की अमराई।
आई वासन्ती ऋतु आई।

अर्थ—सोने के समान नूतन लाल पत्ते इन्द्रधनुष की शोभा लेकर खिल उठे हैं और आँगन का आम-पेड़ कोमल पत्तों से लहलहा उठा है। बसन्त की ऋतु आ गई है।

कानन-कानन उपबन-उपवन,
उमड़ उठे नव सौरभ के घन,
वह देखो मद भरी पिकी ने,
कैसी झीड़ उठाई।

अर्थ—बन-बन और उपवन-उपवन में सुगन्धि के बादल उमड़ रहे हैं। देखो मस्ती भरी कोयल ने भी अपनी आवाज की कैसी धूम मचाई हुई है।

कोमल बाहु लता फैलाओ,
स्नेहालिंगन कुञ्ज बनाओ।
जीवन के पतझर में सबको,
मधु ऋतु पड़े दिखाई।
आई वासन्ती ऋतु आई।

अर्थ—तुम अपनी कोमल भुजा (बाजू) फैलाओ और प्रेम पूर्वक आलिंगन (गले लगाना) का कुञ्ज बनाओ, जिससे इस सुनसान जीवन में भी नया वसन्त दिखाई पड़े। बसन्त ऋतु आगई है।

शब्दार्थ—स्वर्ण=सोना, ताम्र=ताँबा—ताँबे जैसा रंग, लोहित=लाल, पल्लव=पत्ता, सुरधनु=इन्द्रधनुष, वैभव=धन-दौलत, किसलय=पत्ता—नन्हा पत्ता, वासन्ती ऋतु=वसन्त बहार, कानन=जंगल, सौरभ=सुगन्धि—खुशबू, घन=बादल, मदभरी=मस्ती भरी, पिकी=कोयल।

प्रताप

[श्याम नारायण पाण्डेय]

संकेत—यह कविता भाग श्याम नारायण पाण्डेय की रचना 'महाराणा प्रताप' से लिया गया है। इस में कवि ने महाराणा प्रताप की वीरता तथा मातृ-भूमि के लिए त्याग की महिमा का वर्णन किया है।

भाव—वह स्वतन्त्र शासक यज्ञ की आग की भाँति जल रहा था, उसके रोम-रोम में वह चमकती हुई चिनगारी चमक रही थी। माता के चरणों में स्नेह जोड़कर उसने अपना सब कुछ लुटा दिया था और सोए हुए मेवाड़ में अपना सुन्दर यश फैला दिया। प्रताप का शरीर बड़प्पन की इच्छाओं से भरा हुआ था, उसने हम दुःखियों की आहों से अपना शरीर तक फूँक दिया। भारत का वीर कहाकर उसने अपना सब वैभव (शान-शौकत) स्वाहा कर दिया। माता के मुख की लालगी की प्रताप ने संसार की दौलत को ठुकराते हुए भी रक्षा की। कठोर प्रतिज्ञा को निभाया और युद्धभूमि में अपना खून दिया। उसने माता के चरणों को अपने खून से धोया था। जहाँ तीखे बाणों की वर्षा हो रही थी वहीं राणा प्रताप अपने प्राणों की बाजी लगाकर बढ़ता गया। उसके क्रोध की आग धधक रही थी और उसने रणचण्डी (युद्ध) को खून रूपी शराब का प्याला पिलाया। उसके एक इशारे से ही वीरों ने पर्वतों के मार्ग भी खून से रंग दिये। उसकी अमर कहानी आज भी जावरमाता तथा हल्दी घाटी के मैदानों में गूँज रही है। प्रताप ने तलवार उठाकर लाखों से युद्ध करते हुए मातृभूमि की रक्षा की और उसकी आँखों के आँसू पोंछ दिये। आज जिसकी समाधी से स्वतन्त्रता की आग निकल रही है, ऐसा वह स्वतन्त्र वीर-त्यागी, यहीं कहीं छिपा हुआ है।

यज्ञ अनल सा धधक रहा था वह स्वतन्त्र अधिकारी।
रोम-रोम से निकल रही थी चमक-चमक चिनगारी॥
अपना सब कुछ लुटा दिया था, जननी पद नेह लगाकर।
कलित कीर्ति फैला दी है, निद्रित मेवाड़ जगाकर॥

अर्थ—वह स्वतन्त्र अधिकारी (मालिक—जनता का स्वामी) यज्ञ की अग्नि की भाँति जल रहा था, उसके रोम-रोम से चमकती हुई आग की चिनगारी निकल रही थी। उसने माता के चरणों में प्रेम लगाकर अपना सब कुछ लुटा दिया था और सोए हुए मेवाड़ को जगाकर अपनी सुन्दर कीर्ति (यश) सब जगह फैला दिया था।

भरा हुआ था उर प्रताप का, गौरव की चाहों से।
फूँक दिया अपना शरीर, हम दुखियों की आहों से॥
जग-वैभव-उत्सर्ग किया भारत का वीर कहा कर।
माता मुख लाली प्रताप ने रख ली लहू बहा कर॥

अर्थ—प्रताप का हृदय बड़प्पन की इच्छाओं से भरा हुआ था। उसने हम दुखियों की आहो से अपना शरीर भी फूँक दिया था अर्थात् दुखियो की आहों को देखकर उनका दुःख मिटाने के लिए उसने अपना सर्वस्व वार दिया था। भारत का वीर कहाकर उसने अपना तमाम जग-वैभव (संसार की सुख-सम्पत्ति आदि) ठुकरा दिया। और माता (अपने देश) के मुख की लाली को अपना खून देकर रख लिया। अर्थात् अपना सर्वस्व न्योछावर करते हुए प्रताप ने भारत माता के गौरव की रक्षा की।

भीषण प्रण तक किया रक्त से, समर सिन्धु भर डाला।
ले नंगी तलवार बढ़ा, सब कुछ स्वाहा कर डाला॥
अरावली-उच्चत शिखरों पर सजाता रहा रणों को।
अपने शोणित से धोया था, माँ के मृदु चरणों को॥

अर्थ—प्रताप ने कठिन से कठिन प्रतिज्ञा करते हुए लड़ाई रूपी सागर को

भर डाला, अर्थात स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञा लेकर उसने तलवार उठाई और युद्ध की आग भड़का दी। उसने अरावली के पहाड़ों पर युद्ध को सजाया और अपने खून से माँ के कोमल चरणों को धोया था। अर्थात् अरावली के पहाड़ों में युद्ध को जगाकर देश की स्वतन्त्रता के लिए अपना खून बहाया।

बढ़ता रहा प्रताप लगा कर बाजी निज प्राणों की।
जहाँ हो रही थी वर्षा चोखे-चुभते बाणों की॥
रणचण्डी को पिला दिया शोणित-मदिरा का प्याला।
बड़वानल सी धधक रही थी, क्रोधानल की ज्वाला॥

अर्थ—प्रताप अपने प्राणों की बाजी लगाकर आगे बढ़ता रहा। जहाँ तीखे बाणों की वर्षा (जहाँ दुश्मन के तीखे बाणों की वर्षा हो रही थी) वहाँ प्रताप आगे बढ़ता जा रहा था। उसने रणचण्डी (युद्ध-रण की चण्डिका) को रुधिर रूपी शराब का प्याला पिला दिया। और उसके क्रोध की आग समुद्र की आग की भाँति धधक रही थी।

उसके एक इशारे पर वीरों ने ले तलवारें।
पर्वत-पथ रंग दिये रक्त से ले शत-शत खर धारें॥
गूँज रही जावरमाता में उसकी अमर कहानी।
अब तक हल्दी घाटी के पथ पर है समर निशानी॥

अर्थ—उसके एक इशारे पर वीरों ने तलवारें उठा लीं। और हाथ में ली हुई तीखी धारों वाली तलवारों से पर्वतों के रास्ते भी रंग दिये। उस वीरता की अमर कहानी जावरमाता में गूँज उठी। और अब तक उस वीरता-भरे युद्ध की निशानी हल्दी घाटी के मार्ग पर है। अर्थात् उस लल्दी घाटी के मैदान में वीरता से लड़े गये युद्ध की निशानी की याद आज भी वह मैदान प्रस्तुत कर रहा है॥

रक्षा की तलवार उठाकर, समर किया लाखों से।
पोंछ दिये आँसू प्रताप ने माता की आँखों से॥
निकल रही जिसकी समाधि से स्वतन्त्रता की आगी।

यहीं कहीं पर छिपा हुआ है वह स्वतन्त्र वैरागी॥

अर्थ—प्रताप ने तलवार उठा कर अपने देश की रक्षा की और लाखों से युद्ध किया। उसने ऐसा करते हुए माता के आँसू पोंछ दिये। अर्थात् शत्रु से देश को बचा कर जनता के दुःख को दूर किया। आज जिसकी समाधि से स्वतन्त्रता की आग निकल रही है वह राणाप्रताप स्वतन्त्र वैरागी (स्वतन्त्रता का मतवाला) यहीं कहीं छिपा हुआ है। अर्थात् मर कर भी अमर है और आज भी उसका यश उसे जीवित रखे हुए है।

शब्दार्थ—नेह=प्रेम, निद्रित=सोया हुआ, उत्सर्ग=त्याग, स्वाहा=भस्म, शोणित=खून, बड़वानल=समुद्र में जलने वाली आग।

———

चेतक

संकेत—यह कविता पाण्डेय जी की रचना 'हल्दी घाटी' से ली गई है। इसमें कवि महाराणा प्रताप के घोड़े 'चेतक' की वीरता का वर्णन करता है कि किस प्रकार वह युद्ध के मैदान में उछल-कूद कर तलवारों, भालों और हाथियों के जमघट को पार करता हुआ शत्रु के सिर पर वार करके उसे मार गिराता था।

भाव—चेतक की टाप सुन कर शत्रु चिल्ला उठते—'अब होश करो, भागो चेतक आ गया है और वह देखो भाले की नोक दिखाई पड़ रही है।' वह चेतक क्या था बड़वानल था। उसने हृदय की आग जला दी है। ऐसी बात उसने सब जगह चला दी थी कि विजय चेतक की ही होगी। जिस शत्रु का घोड़ा दौड़ता हुआ आगे बढ़ आता चेतक झट उछल कर उसकी मौत के समान पहले ही उसके सिर पर आ धमकता। वह लड़ते-लड़ते अपनी टाप कद कर शत्रुओं पर रख देता और कभी अपने चंचल दो पैरों पर खड़ा हो जाता। वह आगे ही आगे बढ़ता

था, वह न तो बाज था और न पक्षी फिर भी आसमान पर उड़ता था। वह अचानक लड़ाई में कूद कर वार करता था, संहार करता था, कभी छिप जाता और कभी प्रकट हो जाता। वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर लड़ता था और बरछी-बाणों आदि की परवाह न करता था। हाथियों की गालों को फाड़ कर, कभी दौड़ कर, सिमट कर और उड़ कर शत्रु की गर्दन पर आ धमकता। चेतक के वारों से शत्रु ने भी डर से 'चें' बोल दिया। वह चेतक शत्रु की खूना तलवारों से नहीं डरता था। इस प्रकार हवा में उड़ने वाला घोड़ा हो तो चेतक जैसा ही जो विजय पा-पा कर मौत से भी लड़ ले।

शब्दार्थ—(नये शब्द न आने के कारण इस कविता का कोई शब्दार्थ नहीं दिया गया)।

Shri Bushanlal Bhat.

friend of Manmohan Sahib

गीत

[आरसी प्रसाद सिंह]

संकेत—यह कविता श्री आरसी प्रसाद सिंह की कविताओं में से ली गई है। इस में कवि अकेले जीवन की झलक दिखलाता हुआ कहता है कि जीवन में मनुष्य को अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अकेले ही इस संग्राम को लड़ना पड़ता है।

भाव—इस जीवन की यात्रा में मनुष्य को सदा दीप-शिखा की भाँति (कष्टों और कठिनाइयों से) जल-जल कर अकेले ही चलना है। इस अँधेरे मार्ग पर जो भयंकर जंगल की तरह है भूलते-भटकते और सुख की सब आशायें खोकर जब तक सवेरा (आशा की किरण) नहीं होता बूँद-बूँद होकर गलते रहना होगा। चाहे ऊपर पर्वत की चोटी हो या नीचे दुर्गम सागर हो किन्तु तेरा विश्वास अमर होना चाहिये। जब तक अन्तिम (आखिरी) विजय नहीं होती तब तक तुम्हें अपने मार्ग से हटना नहीं होगा। सब दु:खों को अपना कर बिना सहारे के तथा अपने पर ही निर्भर होकर तुम्हें इस अग्नि परीक्षा की ज्वाला में भी अपना अन्तःकरण खोल कर सोने की भाँति तप कर अपने साँचे में ढलना होगा। इसलिये तुम्हें अकेले ही चलना होगा।

शब्दार्थ—एकाकी=अकेले, अनिद्रित=नींद के बिना, अपलक=बिना पलकों के मूँदे हुए, दीप-शिखा=दीए की लपट, पूरित=भरे हुए, दुस्तर=जिसे कठिनाई से तैरा जाये या पार किया जाये, शैल शिखर=पहाड़ की चोटी, दुर्गम=जहाँ मुश्किल से पहुँचा जाए, अंगीकृत=स्वीकार—अपनाना, निरवलम्ब=बिना सहारे के, आत्मस्थ=अपने पर निर्भर।

———

यह मेरा काश्मीर

[हरिकृष्ण 'प्रेमी']

संकेत--यह कविता श्री हरिकृष्ण प्रेमी द्वारा रची गई है। इसमें कवि ने काश्मीर की दैवी सुन्दरता तथा खूबियों का सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। इसके झरने, पर्वत-मार्ग, डल, चश्मे, जंगल, उपवन, फूल आदि सब का सून्दर दृश्य दिखलाया है।

भाव—यही है मेरा काश्मीर, जिसकी जमीन स्वर्ग के समान है। इसमें गहरी खड्डे, ऊँची पर्वतों की श्रेणियाँ, हर चट्टान बोलने वाली तथा हर कोना बोलने वाला है। इस जादू-भरे देश पर दुनिया कुर्बान हो रही है। बर्फ का दुशाला ओढ़ कर चोटियाँ चमक रही हैं। इसके अँग-अँग में बीस वर्षों की स्त्री के समान यौवन फूट रहा है। इसकी सुन्दरता देख कर प्राणों में तूफान जैसा उठता है। इसके दरियाओं में मानों चाँदी घुल कर बहती है और कुदरत झरनों में मोती बहा रही है। यह धरती कुदरत की मस्ती-भरी मुस्कान है। यह देश आसमान् का टुकड़ा है और इसमें केसर की क्यारियाँ हैं। इसके ऊँचे-ऊँचे पेड़ चारों ओर इसके पहरेदार बने हैं। ठण्डी-ठण्डी हवा जैसे बाण मार रही है। यह स्वर्ग की वाटिका है जिसमें फूल और फल लदे हुए हैं इसके इस यौवन को देखकर खुद माली भी फूल उठा है। इसकी मस्ती-भरी निगाह मुर्दे में भी जान फेंक देती है। इस काश्मीर रूपी सुन्दरी के चक्करदार रास्ते ही घुँघराले बाल हैं, इनसे जो फिसल जाये उसको जान के लाले पड़ जाते हैं। इनके मार्गों पर जहान हैरान है। पानी पर तैरती हुई मस्तानी किश्तियाँ हंसों की चाल चलती हैं और पतवारें लहरों से टकरा कर गान गाती हैं। प्रातः और सायं बादलों का रंग सोना बिखराता है और इस धरती का कोना-कोना धनी है हिमालय की ऊँचाई के समान इसकी शान भी ऊँची है। काश्मीरियों की

चमकीली अँगुलियाँ कला के कितने ही सुन्दर काम करती हैं; उनकी बातें झरनों के संगीत की भाँति हैं। ऊँची पर्वत मालाओं के नीचे झोंपड़ियों में आजादी की घड़ियाँ नाच रही हैं। और पत्ती-पत्ती बंसुरी का संगीत सुना रही हैं। इस देश के हरे-हरे खेत मखमल की कालीनों के समान हैं। किसकी शक्ति है जो इनको हमारे से छीने ? क्योंकि आठों पहर इसका पहरा हिन्दुस्तान दे रहा है।

गहरे-गहरे खड्ड निराले, ऊँची पर्वत माला।
हर चट्टान बोलने वाली, हर कोना हरियाला ।।
इस जादू से भरे मुल्क पर है दुनिया कुर्बान।
यह मेरा काश्मीर कि जिसकी धरती स्वर्ग समान ।।

अर्थ—इस काश्मीर में गहरी-गहरी खड्डे हैं, ऊँची पर्वतों की चोटियाँ हैं और हर चट्टान बोलने वाली है। इसीलिये इस जादूभरे मुल्क पर सारी दुनिया कुर्बान हो रही है। यह मेरा काश्मीर है, जिसकी धरती स्वर्ग के समान है।

चमक चोटियाँ रहीं, बर्फ का सर पर ओढ़ दुशाला,
अंग-अंग में यौवन मानो, बीस बरस की बाला।
इसका रूप निरख प्राणों में उठता है तूफान।
यह मेरा काश्मीर........

अर्थ—काश्मीर के पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ का दुशाला पहन कर चमक रही हैं। इनके अंग-अंग में सुन्दरता-भरा यौवन इस प्रकार लचक रहा है जिस प्रकार बीस वर्ष की स्त्री। इस रूप को देख कर प्राणों में तुफान उठ बैठता है।

इसकी दरिया दिली की चाँदी बहती बन कर पानी,
बहा रही मोती झरनों में कुदरत की मनमानी;
यह धरती है, या कुदरत की मादक मुस्कान !
यह मेरा काश्मीर........

अर्थ—इसके दरियाओं में चाँदी पानी बनकर बह रही है। अर्थात् इसके दरियाओं का पानी चाँदी के समान चमकीला है। प्रकृति (Nature) की मनमानी अर्थात् प्रकृति की व्यापक सुन्दरता झरनों में सीटी बजा रही है। यह धरती है कि कुदरत की मस्ती-भरी मुस्कान है!

आसमान का टुकड़ा भू पर, या केसर की क्यारी,
ऊँचे-ऊँचे पेड़ कि सैनिक करते पहरेदारी;
ठण्डी-ठण्डी हवा महक के मार रही है बाण।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—यह काश्मीर जमीन पर आसमान का टुकड़ा है या केसर की क्यारी है। ये ऊँचे-ऊँचे पेड़ हैं या पहरेदार सैनिक पहरेदारी कर रहे हैं! यहाँ ठण्डी-ठण्डी हवा महक कर बाण मार रही है। अर्थात् महकती हुई शीतल हवा जब चलती है तब शरीर में कम्पन पैदा करते हुए बाण से मारती है।

यह बहिश्त की बगिया, सुमनों एवं सुफलों वाली,
इसका यौवन देख खुशी से फूल उठा खुद माली;
मादक नज़र फूँक देती है मुरदों में भी जान।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—यह काश्मीर स्वर्ग की एक वाटिका है, जिसमें सुन्दर फूल और फल लगे हैं। इसका इस प्रकार का यौवन देख कर खुद माली भी खुशी से फूल उठा है। इसकी मस्ती-भरी नज़र मुर्दों में भी जान फूँक देती है।

चक्कर दार मार्ग बाला के, बालों-से घुँघराले;
फिसल गया कोई भूले से पड़े जान के लाले;
इसकी उलझन भरी डगर पर, है हैरान जहान।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—इसके चक्करदार रास्ते (टेढ़े-मेढ़े रास्ते) स्त्री के बालों के समान घुँघराले हैं। अगर यहाँ से किसी का पैर फिसल गया तो जिंदगी के लाले पड़

जाते हैं । इसके इस कठिन मार्ग (जिसमें सैकड़ों तरह का टेढ़ा-मेढ़ा पन तथ चक्कर दार घुमाव) पर संसार हैरान हो रहा है ।

झूल रही झीलों में झूला, चढ़ती हुई जवानी,
चंचल चाल हंस-सी चलती नौकाएँ मस्तानी;
लहरों से टकरा कर गाती हैं पतवारें गान ।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—इसकी चढ़ती हुई जवानी झीलों के जल पर मानो झूला झूल रही है । ऐसी ही मस्तानी किश्तियाँ हंसों जैसी चंचल चाल चलती हैं । उनकी पतवारें लहरों से टकरा कर गान गाती हैं ।

साँझ-सवेरे रंग बादलों का बिखराता सोना,
विविध वैभवों से पूरित है इसका कोना-कोना;
ऊँचा है जिस भाँति हिमालय वैसी इसकी शान ।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—सायं-सवेरे बादलों का रंग सोना बरसाता है, इस काश्मीर का कोना-कोना बहुत प्रकार के रंगों से भरपूर है । जिस प्रकार हिमालय ऊँचा है, उसी प्रकार इसकी शान भी ऊँची है ।

काश्मीरिन की किरणों जैसी, अँगुलियाँ चमकीली,
करती कितने काम कला के, कोमल, कुशल लचीली;
बातें करती हैं तो लगता झरने, गाता गान ।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—काश्मीरिन की किरणों जैसी चमकदार, कोमल, चतुर (Expert) तथा लचकदार अँगुलियाँ कितने ही कला के काम करती हैं । जब वे बातें करती हैं तो ऐसा लगता है, जैसे झरना गीत गा रहा हो ।

ऊँची हैं पर्वत मालाएँ, पर नीची झोंपड़ियाँ,
जिनके भीतर नाच रही हैं आजादी की घड़ियाँ;
पत्ती-पत्ती सुना रही है, बाँसुरिया की तान ।
यह मेरा काश्मीर·········

अर्थ—इस कश्मीर में ऊँची-ऊँची पहाड़ों की कतारें है और नीचे-नीचे झोंपड़ियाँ हैं, उनके भीतर मानो आजादी की घड़ियाँ नाच रही हैं। इसका पत्ता-पत्ता बाँसुरी की तान सुना रहा है।

हरे-हरे हैं खेत कि मानो मखमल की कालीनें;
किन की इतनी शक्ति कि हम से आकर इनको छीन;
आठों पहर किया करता है, पहरा हिन्दुस्तान।
यह मेरा काश्मीर कि जिसकी धरती स्वर्ग समान॥

अर्थ—हरे-भरे खेत ऐसे दीखते हैं, जैसे मखमल की कालीनें (गलीचे) हों। किसकी इतनी ताकत है कि वे आकर इन मखमली कालीनों को हमारे से छीन ले क्योंकि आठों पहर हिन्दुस्तान इनका पहरा दे रहा है। यह मेरा काश्मीर है, जिसकी धरती स्वर्ग के समान है।

(**नोट**—इस कविता में कोई नवीन शब्द नहीं आया जिसका शब्दार्थ दिया जाये। इसमें आए हुए कठिन शब्दों के अर्थ पीछे दिये जा चुके हैं।)

———

गीत

[शिव मंगल सिंह 'सुमन']

संकेत—यह गीत श्री सुमन जी की रचना 'प्रलय सृजन' से लिया गया है, इसमें कवि जीवन की जद्दोजहद के समुद्र में भी अपने जीवन की किश्ती को घुमाकर संकट के तूफानों की ओर बढ़ा ले जाने के लिए माँझी (मल्लाह) से कहता है। कवि का दृष्टिकोण है कि ऊँचे-ऊँचे संकट के तूफानों से होड़ लेकर भी मनुष्य को आगे ही बढ़ने का प्रयत्न करना चाहिए क्योंकि मिट्टी के पुतले मनुष्य ने जीवन में कभी हार नहीं मानी।

भाव—हे नाविक ! तुम तूफानों (जीवन के संकटों) की ओर अपनी किश्ती घुमा दो। आज समुद्र ने विष उगल दिया है और लहरों की जवानी में भी हलचल मची हुई है। इसलिए आज समुद्र और हृदय दोनों में एक साथ ही तूफान उठा है। हे नाविक ! तुम इस अंधड़ (कुहराम) के बीच अपनी हिम्मत को सँभालो और लहरों में ही कुछ बोलो क्योंकि जीवन में कभी-कभी ही तूफानों का प्यार मिलता है (जीवन में कभी-कभी ही दुःखों से भिड़ने का मौका मिलता है)। इस सीमा-हीन ब्रह्माण्ड की भी अपनी सीमा जाननी चाहिए और सागर की भी अपनी सीमा पहचाननी चाहिए। क्योंकि मिट्टी के बने हुए मनुष्य ने इन असीमों से कभी हार नहीं मानी। माना कि सागर की अपनी समर्थता है लेकिन माँझी भी तो नहीं थकता। जब तक उसके अन्दर दम है वह रुकता नहीं। इसी के बल पर उसने सातों सागर पार कर दिये हैं।

तूफानों की ओर घुमादो नाविक ? निज पतवार।
आज सिंधु ने विष उगला है, लहरों का यौवन मचला है।
आज हृदय में और सिन्धु में साथ उठा है ज्वार।

अर्थ---हे माँझी ! अपनी नाव तूफानों की ओर घुमा दो। अर्थात् हे संकटों में पड़े हुए मनुष्य ! तुम अपनी इस जीवन-किश्ती को संघर्षों (Struggles) की बीच घुमा दो। आज सागर ने विष उगल दिया है। यानी कि मुसीबत के समय सागर भी दूनी मुसीबत पैदा कर रहा है और लहरों का यौवन भी मचल उठा है (जिन लहरों में यह जीवन-किश्ती पड़ी हुई है, वे लहरें भी जोर-शोर से उछल रही हैं) इसलिए सागर और हृदय दोनों में तूफान उठ रहा है। जैसे सागर बढ़ा-चढ़ा है उसी प्रकार हिम्मत के साथ रुकावटों का सामना करने के लिए हृदय में भी जोश का तूफान उठा है।

लहरों के स्वर में कुछ बोलो, इस अन्धड़ में साहस तोलो
कभी कभी मिलता जीवन में तूफानों का प्यार।
तूफानों की ओर.........

अर्थ—तुम इस मुसीबत में अपनी हिम्मत का तोल करो (उसकी परख करो कि वह कितनी है) और लहरों के अन्दर अपनी आवाज़ को फैला दो। अर्थात् लहरों पर छा जाओ। जीवन में इन कष्टों के तूफान का प्यार कभी-कभी मिलता है। अर्थात् मनुष्य की हिम्मत और धीरज का नाप-तोल करने के कारण यह तूफान मनुष्य के लिए प्यारी वस्तु है इसी में मानव को उज्ज्वल बनने का मौका मिलता है।

यह असीम निज सीमा जाने, सागर भी तो यह पहचाने,
मिट्टी के पुतले मानव ने कभी न मानी हार।
तूफानों की ओर.........

अर्थ—यह असीम (Limitless world) भी अपनी सीमा को पहचान ले। अर्थात् यदि यह असीम है तो मानव की हिम्मत भी असीम है। उसके आगे इसे अपने असीम होने का घमण्ड छोड़कर अपनी सीमा की ओर ध्यान देना चाहिए। मानव अपने उत्साह से असीम को भी पार कर सकता है, इसका ज्ञान असीम को होना चाहिये। इसी प्रकार सागर को भी अपने बड़प्पन

को लेकर इस सचाई की पहचान करनी चाहिए। क्योंकि मिट्टी के पुतले मनुष्य ने कभी अपनी हार नहीं मानी।

सागर की अपनी क्षमता है पर माँझी भी कब थकता है।
जब तक साँसों में स्पन्दन है उसका हाथ नहीं रुकता है।
इसके ही बल पर कर डाले सातों सागर पार।
तूफानों की ओर घुमा दो नाविक! निज पतवार।

अर्थ—यद्यपि सागर के अन्दर अपनी ताकत या सामर्थ्य है। परन्तु जीवन की नौका खेने वाला माँझी भी तो नहीं थकता। जब तक उसकी साँसों में हरकत है, उसका हाथ नहीं रुकता। अर्थात् वह हिम्मत नहीं हारता। इसके बल पर ही उसने सातों सागर पार कर डाले हैं।

शब्दार्थ—नाविक=मल्लाह, मचला=हलचल पैदा की, ज्वार=समुद्र का ज्वार-भाटा, अन्धड़=वर्षा—आँधी और अन्धकार का जमघट, क्षमता=सामर्थ्य—ताकत, स्पन्दन=कँपकँपी, हरकत—चेष्टा (Motion)।

———

बापू

[हरिवंशराय 'बच्चन]

संकेत—यह कविता श्री 'बच्चन' की रचना 'खादी के फूल' में से ली गई है, इसमें कवि श्री बापू (म० गाँधी) को श्रद्धाञ्जलि देता हुआ उसके स्थापित किये हुए महान् आदर्शों की ओर संकेत करता है और बापू के बाद उनकी रक्षा कौन करेगा ? इस पर भी चिन्ता प्रकट करता है।

भाव—हे बापू ! निस्संदेह तुम्हारे गुण देश (भारत) गायेगा और तुम्हारे जैसी विभूति सदियों के बाद भी नहीं आएगी, पर जिन आदर्शों को लेकर तुम जिए और मरे कल का भारत उन्हें कितना अपनायेगा ? तुम्हारे दाएँ-बाएँ बड़ी-बड़ी मुसीबतें और रुकावटें थीं फिर भी तुम उनके बीच सम्हल कर साधक की भाँति चले। तुम तो तलवार की धार जैसा (कठिन) प्रेम का मार्ग छोड़ गये, पर उस पर चलेगा कौन ? तुमने पशुता और दानवता (राक्षस-पन) के साथ जो लड़ाई लड़ी थी, उससे तो तुम मनुष्यता का एक बड़ा कवच तो छोड़ गये परन्तु उसके बोझ को कौन उठायेगा ! जिससे सम्राट् भी डरे थे, फिरकापरस्ती भी घबराई थी ऐसे तुम अजगव तो छोड़ गये पर उस पर प्रत्यंचा (धनुष की डोरी) कौन चढ़ायेगा ?

गुण तो निःसंशय देश तुम्हारे गाएगा,
तुम सा सदियों के बाद कहीं फिर पाएगा,
पर जिन आदर्शों को लेकर तुम जिए-मरे
कितना उनको कल का भारत अपनाएगा ?

अर्थ—हे बापू निःसंदेह तुम्हारे गुण भारत देश गायेगा, और तुम्हारे जैसा युग-पुरुष सदियाँ बीत जाने पर यह देश कहीं पा लेगा। अर्थात् युग-युगों

के बाद मुश्किल से कहीं तुम्हारे जैसे महान् को यह देश प्राप्त करेगा। परन्तु जिन आदर्शों को लेकर तुम जिए और मरे थे, कल का भारत उन्हें कितना अपनायेगा ? अर्थात् आशा नहीं कि उन आदर्शों को आगे का भारत अपनाये।

बाएँ था सागर दाएँ था दावानल,
तुम चले बीच दोनों के साधक सम्हल-सम्हल
तुम खड्ग-धन-सा पंथ प्रेम का छोड़ गए,
लेकिन उस पर पाँवों को कौन बढ़ाएगा ?

अर्थ—तुम्हारे बाएँ सागर था और दाएँ जंगल की आग। अर्थात् तुम्हारे चारों ओर कठिनाइयाँ थीं। फिर भी तुम दोनों के बीच साधक की भाँति सँभल-सँभल कर चले। तुम तलवार की धार के समान कठिन प्रेम का पंथ छोड़ गये थे। लेकिन उस पर कौन चलेगा ?

जो पहन चुनौती पशुता को दी थी तुमने,
जो पहन दनुजता से कुश्ती ली थी तुमने,
तुम मानवता का महाकवच तो छोड़ गए
लेकिन उसके बोझे को कौन उठाएगा ?

अर्थ—तुमने जो कुछ पहनकर पशुता को चुनौती दी थी और जो पहनकर राक्षसपन के साथ कुश्ती लड़ी थी। इससे तुम मनुष्यता का एक बड़ा कवच तो छोड़ गये लेकिन उसके बोझे को कौन ढोयेगा ? अर्थात् तुम्हारे द्वारा खड़ी की गई मनुष्यता को कौन अपनायेगा ?

शासन सम्राट डरे जिसकी टंकारों से,
घबराई फिरकेदारी जिसके वारों से,
तुम सत्य हिंसा का अजगव तो छोड़ गए
लेकिन उस पर प्रत्यंचा कौन चढ़ाएग ?

अर्थ—जिसे तुम्हारी टंकारों अर्थात् गर्जना से सम्राट् भी डर गये थे और जिसके प्रहारों (चोटों) से फिरकापरस्ती भी घबरा गई थी, वह तुम जिस सत्य और अहिंसा के अजगव को छोड़ गये थे उस पर अब डोरी कौन चढ़ायेगा ! अर्थात् सत्य और अहिंसा को कौन अपनायेगा ?

नोट—विशेष शब्दार्थ नहीं हैं।

गीत

संकेत—यह कविता श्री बच्चन की रचना 'निशा-निमन्त्रण' से ली गई है। इसमें कवि दिन ढले। (संध्या आने का) वातावरण दिखलाता है कि इस समय रास्ते में कहीं रात न पड़ जाए इस कारण राही जल्दी-जल्दी चला जा रहा है इत्यादि।

भाव—दिन जल्दी ढलता जा रहा है। कहीं रास्ते में रात न पड़ जाये, अभी मंजिल भी दूर है, यह बात सोचकर थका हुआ राही जल्दी-जल्दी चलता है। बच्चे आने की आशा में होंगे और घोसलों से झाँक रहे होंगे—यह विचार चिड़ियों के परों मे काफी चंचलता (तेज़ी) भरता है। मुझसे मिलने के लिए कौन उतावला है ? और मैं किसके लिए चंचल बनूँ ? यह प्रश्न चलते हुए पाँवों में ढील पैदा करता है, और हृदय में व्याकुलता भरता है। दिन जल्दी ढलता जा रहा है।

जागो सखि, अब सपने बीते

[तारा पाण्डे]

संकेत—यह कविता श्री तारा पाण्डे की रचनाओं में से ली गई है, इसमें कवयित्री जीवन की अन्तिम अवस्था (वृद्धावस्था) में आकर पिछले सुख-दु:खों को जीत कर अब जीवन के असली सुख का अनुभव कर रही है। संसार की असलीयत समझने के बाद अब उसके वे झूठे सपने समाप्त हो गए हैं। इसलिये ज्ञान की दशा में अब उसे पूर्ण सुख है।

भाव—हे सखि, जागो, अब वे पिछले सपने बीत गए हैं। इसी कारण पूर्व की दिशा में उषा की लालगी फैली हुई है। अब दु:खों का समय बीत गया है। इसलिये मन-चाहे वर (इच्छित वस्तुएँ) माँग लो। मेरा बचपन रोने में बीता और यौवन आग में झुलसा परन्तु अब जीवन के अन्तिम दिनों में मैंने वे सब सुख-दु:ख जीत लिये हैं। जब कोयल कू-कू सुनाने लगी तब मेरे प्राणों में फिर पीड़ा जग आई, और आँसुओं के मोती ढुलक कर मन के सागर को खाली करने लगे (जब वास्तविक जीवन की गुन्जार मेरे कानों में पड़ी तो पिछले अज्ञान पर आँसू बहने लगे।)

परिचय

संकेत—यह कविता श्री पाण्डे की रचनाओं में से ली गई है। इस में कवयित्री प्रियतम के वियोग में अपनी एकान्त दुनिया में रह कर अन्दर ही अन्दर निराशा से घुलती है परन्तु बाहर हँस कर लोगों से अपनी व्यथा छिपा लेना

चाहती है । सपने की दुनिया की रानी और निराशा की दुनिया में दीवानी यही कवयित्री का परिचय है ।

भाव—आज सोई हुई पीड़ा के जग जाने से हृदय चर हो गया है । हे निष्ठुर (बेरहम) प्रेमी ! तुम जाने-अनजाने मुझे सता रहे हो । तुम यही सोचते हो कि इसे खूब सता लिया जाये क्योंकि ऐसा समय फिर नहीं आएगा । मैंने तो अब सूने-पन में ही अपना एक प्यारा संसार बना लिया है और रो-रो कर अपने दिल को बहलाया है । बाहरी संसार को दिखावे के रूप में चाँद की किरणों से मैंने हँसना सीख लिया है, जिससे जग में मुझे कोई दुःखी न जान पाए और थोड़ी सी खुशी दे दे । अब मुझे जीवन की कोई चाह नहीं । मेरी सब इच्छाएँ चूर हो गई हैं । इस झूठे संसार को देख कर यह प्यार भी पागल हो गया है । सुनो, मेरा यह परिचय है—मैं सपने के संसार की रानी हूँ, हे सखि ! निराशा के साथ होकर दीवानी बन कर फिरती रहती हूँ ।

———

ठहर जाओ

[रामेश्वर प्रसाद शुक्ल 'अंचल']

संकेत—यह कविता अंचल जी की रचना 'लाल-चूनर' में से ली गई है। इसमें कवि अपने प्रिय को कुछ देर ठहर जाने के लिये कहता है, जिससे उसकी आँखें प्रिय का दर्शन पाकर प्रसन्नता प्राप्त कर सके। प्रिय को देखने से कवि का बुझा हुआ दीपक फिर जल उठेगा, प्रिय के कण्ठ की बाँसुरी उसके लिये जलधारा सी शीतल, सुन्दर मूर्ति दूध की गंगा लिये हुए चाँद के समान और अपना आप अमर होता हुआ दीख पड़ेगा।

भाव—हे प्रिय ! तुम घड़ी भर ठहर जाओ ताकि तुम्हें आँखे देख लें। अभी तुम्हारा स्वर मेरे कानों में गूँज उठे, मेरे रोम-रोम में मीठी रस की धार बह जाए और बुझा हुआ हृदय का दीपक फिर जल उठे। तुम्हारी सुन्दरता की ओट मेरे लिये कितनी शीतल है ? तुम्हारे कण्ठ का स्वर जल की धार सा चंचल और तुम्हारी दृष्टि मेरी आत्मा की छाया है। यह बसन्त की हवा पुष्पों की सुगन्धि लुटाती हुए तुम्हें साथ बहा कर लाई है मानो कि चाँद आकाश की दूध-गंगा के साथ उतर आया हो। मेरे इस गिरे हुए मनरूपी महल में एक सपने की माया (दैवी आनन्द) भर गई है। मुझे ऐसा लग रहा है कि जैसे कि मैं तुम्हारे सामने सत्य बन गया हूँ और जो पूर्णता मुझे तुम्हारे से मिली है, उसकी समानता कोई देवता नहीं प्राप्त कर सकता। मुझे वह चिर-प्यास लगी हुई है, जिससे अमरता भी जगमगा उठती है। तुम और घड़ी भर ठहर जाओ ताकि मेरी आँखें तुम्हें देख लें।

(**नोट**—कवि भगवान् को अपना प्रिय मान कर उसी के प्रति अपने उद्गार प्रकट कर रहा है। वह उस प्रियतम के दर्शनों से अमरता पाकर उस चिर-

प्यास को बुझाना चाहता है जिसके बुझने से अमरता भी चमक उठती है। उस प्रियतम की एक धीमी झलक पाकर कवि अपने को सत्य अनुभव करने लगा है और इससे उसे मिली है पूर्णता।)

मेरी जलन

संकेत—यह कविता अंचल जी की रचना 'वर्षान्त के बादल' से ली गई है इसमें कवि यह प्रकट करता है कि उसके हृदय की जलन कभी शान्त नहीं होती। प्रियतम के वियोग की वह जलन है, इस पर रह-रह कर उसके हृदय में किसी के रूप की घटा घिर आती है, अंगारे सा जलता हुआ वह मुख, आँसू भरे वे नेत्र तथा पत्थर को पिघला देने वाले वे बोल उसे (कवि को) सोने नहीं देते। रह-रह कर उसके प्राण उस ओर खिचे चले जा रहे हैं।

भाव—मेरी जलन सपने में भी शान्त नहीं होती। मेरे हृदय में फिर किसी की ममता जाग पड़ी है, फिर किसी की सुन्दरता की घटा घुमड़ पड़ी है, फिर आँखों की पुतलियों में किसी की लज्जा का सौन्दर्य छा गया है और फिर अंगारे सा जलता हुआ वह मुख किसी का याद आ गया है। गर्मियों में सूखी हुई नदी के समान यह मन प्यास का समुद्र बन रहा है और फिर इस प्यासी अनुभूति (Feeling) में नई चाह का झरना उमड़ आया है। आज इस जीवन के किनारों का बाँध कौन लूट ले रहा हैं जिससे कि सपने में भी मेरी वह जलन शान्त नहीं हो पा रही है। सायंकालीन चन्द्रमा की चाँदनी की तरह सुन्दरता की इन लहरों के अन्दर किसकी उदासी झाँक रही है। आँसुओं से भीगे हुए किसी के नीले नेत्र रह-रह कर याद आ रहे हैं। और पत्थर को भी हिला देने वाले किसी के रुँधे कण्ठ के बोल भी सुनाई पड़ रहे हैं। ऐसी हालत में ममता की कौन सी लहरें हैं, जो मुझे सोने नहीं दे रहीं और बरबस मुझे तृष्णा की ओर खींच रही हैं। आज मेरे प्राणों की हवा उसी (प्रियतमा) को घेर कर मँडरा रही है।

हल्दी घाटी की एक साँझ

[देवराज 'दिनेश']

संकेत—यह कविता श्री देवराज 'दिनेश' द्वारा रची गई है। इसमें कवि हल्दी घाटी के युद्ध की एक साँझ का चित्र उतार रहा है। जब चेतक घोड़ पर सवार महाराणा प्रताप मुगलों की सेना में घिर गया तो चेतक ने बड़ी वीरता के साथ उछलते-उछलते शत्रुओं पर प्रहार किया और राणा की रक्षा की, इतने में 'झाला' वीर आकर राणा का मुकुट पहन कर लड़ने लगा। तदनन्तर लड़ते-लड़ते राणा चेतक पर सवार आगे दूर बढ़ा, तो शत्रुदल के राणा शक्तिसिंह ने उससे भेंट करके अपने अपराधों की क्षमा माँगी। दोनों भाई खुले हृदय से मिले।

भाव—ओ नीले घोड़े के सवार ! ओ नीले घोड़े के सवार !! हल्दी घाटी की साँझ ये शब्द गुञ्जायमान करती हुई चली गई। उस नीले घोड़े का सवार योद्धा और स्वाभिमानी वीर महाराणा प्रताप था। वह हल्दी घाटी के युद्ध का बड़ा प्रतापी योद्धा था। उसकी हुंकारों से आकाश हिलता था और धरती थरथराती थी। उसकी छाया में मनुष्यता अपनी थकान मिटाती थी। उसकी पूजा करके स्वयं शक्ति हँसकर उसे वरमाला पहनाती थी। उसके डर से दिल्ली के सम्राट् को रात को नींद नहीं आती थी। आज प्रातः वह हल्दी घाटी के भयंकर युद्ध में उतरा था। और वह देश और जाति की प्रतिज्ञा के बंधन में बँधा हुआ था। अपने घोड़े पर सवार होकर और हाथ में प्रलयकारी भाला लेकर शिवजी के उस भक्त ने शत्रुओं के सागर को मथ दिया। वह बलवान् इज्जत की इज्जत भी धूल में मिलाता हुआ गर्जता चला जाता था। गर्व-भरे

उस चेतक की तेज चाल से मानो हवा भी शर्मा रही थी। जिस ओर वह प्रतापी मुड़ता था, उसी ओर तूफानी चाल को देखकर शत्रु कहने लग पड़ते— "सम्हल जाओ, यह नीले घोड़े का सवार आ पहुँचा है।" वह शेर हाथियों के झुण्ड में फँस गया था पर जब तक उसकी लोहे की मुट्ठी में भाला था तब तक उसे डर नहीं था। वह मुगलों के सेना रूपी समुद्र के बीच 'चेतक' रूपी नौका पर बैठा हुआ भाले की पतवार लेकर दुश्मन के झुण्ड रूपी धाराओं को काटता हुआ चला जा रहा था। वह किश्ती का चतुर मल्लाह प्रबल साहस दिखाता हुआ शत्रुओं की सेना रूपी चंचल लहरों को पीछे ढकेलता चला जा रहा था। घायल (जख्मी) हुए 'चेतक' घोड़े के घावों से खून के चश्मे बह रहे थे। लोग कहते थे "हे गर्वीले चेतक! स्वामी को आफत में न फँसा" तब झाला की नज़र राणा पर पड़ी वह जल्दी से लपक कर उस ओर पहुँचा। और राणा का मुकुट सिर पर धारण करके लड़ने लगा। दुश्मन को झाला और प्रताप दोनों में धोखा हो गया। तब चलते-चलते राणा के कानों में पुकार आई, "अरे! नीले घोड़े वाले सावधान!" राणा को यह स्वर परिचित सा लगा, वह रुक गया और सोचने लगा—यह मुझे प्यारी आवाज से कौन बुला रहा है। रास्ते में वह बलवान् नाला पड़ता था, चेतक तुरन्त उसे लाँघ गया परन्तु इसके पश्चात् ही वह घायल होकर गिर पड़ा। राणा जब नीचे उतरा तभी वह (चेतक) जमीन पर गिरा था। "मेरे प्यारे, मेरे मित्र" कहते-कहते राणा का गला रुँध गया। जब उसने पीछे मुड़कर देखा तो मुगल दिखलाई पड़े तब उसकी आँखों का पानी सूख गया और उन में एक बिजली सी लहराने लगी। उसने झट कमर से खाँडा खींच लिया, दिन भर का थका हुआ राणा अब फिर युद्ध में जूझने लगा। परन्तु राणा को फिर विचार हुआ कि जिसने मुझे "सावधान!" कहा था वह शब्द तो मुगलों का नहीं, किसी परिचित या हित-चिन्तक का है जो मेरी रक्षा करना चाहता है। यह अवश्य कोई मेरा मित्र होगा। इतने में फिर आकाश में शब्द गूँज उठा—"अरे नीले घोड़े वाले सवार!" इतने में उसने देखा कि कुल का अंगारा (कुल का कलंक) उसका

भाई शक्तिसिंह उसे पुकार रहा है, जो देशद्रोही बनकर शत्रु से जा मिला था। पहले तो प्रताप ने समझा कि वह उससे बदला लेने के लिए आ रहा है और भाई को मारकर हत्या का टीका माथे पर लेना चाहता है। उसकी आँखों में बचपन का चित्र घूम गया और हृदय में करुणा (दया) लहराने लगी—वह मन ही मन कह उठा—अरे विधाता ! तेरा लेखा भी कैसा है। मैं बचपन में इससे झगड़ा होने पर यह झूठ-मूठ मेरे से रूठ जाया करता था, इसे 'शक्ता' कहकर मनाता था। तब यह भी मेरी बाहुओं से चिपट कर अपना-आप मुझ में रखे देता था। इसके हृदय में भी मेरे प्रति प्रेम का समुद्र उमड़ता था। पर वाह भाग्य के लेख ! आज यही मुझे मिटाने के लिये आ रहा है। भाई का खून पीकर हृदय की जलन बुझाने के लिये आया है। इतने में शाक्ता (शक्ति सिंह) ने मुगलों को घेर लिया और उन पर प्रहार किया। क्षण भर में ही उस बल-वान् (शक्ति सिंह) ने उनके चार टुकड़े कर डाले। फिर उस महाबली (ताकत-वर) का शब्द गूँज उठा—"अरे नीले घोड़े वाले !" यह नाटक राणा की समझ में कुछ नहीं आया। "यह तो बदला चुकाने आ रहा है" अभी राणा ऐसा ही सोच रहे थे तो शाक्ता पास आ गया। हाथ में नंगी तलवार लिये हुए वह घोड़े से नीचे उतर कर मुस्काया। राणा ने उस मुस्कान को व्यंग्य भरी (Ironi-cal) समझ कर उसे फिर ललकारा—"अरे कुल कलंक, मत चूक, भाई पर वार कर और भाई का हत्यारा बन, तू छोटा है इसलिये मैं तुझे पहले वार करने का अवसर देता हूँ। ले मेरी छाती खुली हुई है अपनी तलवार की जल्दी प्यास बुझा ले।" परन्तु उसी समय शक्ति सिंह की तलवार आकार राणा के चरणों में गिरी। उस शक्ति सिंह का गला रुँधा हुआ था, सिर झुका हुआ और आँखों से पानी का झरना बह रहा था। शक्ति हिंस ने कहा—"हे मेवाड़ देश की शान ! अपने हाथों से मेरा उद्धार करो ? हे भाई, इस पतित शक्ति सिंह को अपने खाँडे से जीवन-लीला समाप्त करो।" राणा के थके हुए पावों को उसकी आँसू-धारा धो रही थी, इधर हल्दी घाटी की साँझ दोनों पर प्रेम बरसा रही थी। उठ मेरे शाक्ता, उठ, मेरी छाती से लग जा, हे भैया ! मैं तेरे नट-खट बचपन के बोल फिर सुन लूँ। हल्दी घाटी की उस संध्या ने देखा कि दोनों भाइयों

के बीच भाग्य की खींची हुई वह काली रेखा अब टूट चली थी। इस लाल दिन की संध्या भी कितनी मस्ती भरी और विचित्र थी ! एक ओर चेतक का वियोग दूसरी ओर शक्ति सिंह का मेल, इससे विचित्र भावों का मेल हो रहा था। राणा के हृदय से खुशी और गमी दोनों के गान एक साथ निकल पड़े—बिछुड़ा हुआ भाई मिला किन्तु अपने प्राण देकर मेरी रक्षा करने वाला चेतक प्यारा भी चल बसा। इतने में भाला धरती पर गिर पड़ा और वह वीर भी चेतक से लिपट गया। "जाओ राणा, बलिदानी का बलिदान व्यर्थ हो जायगा और झाला-माना के खाण्डे का सम्मान भी व्यर्थ हो जायगा।" यह कहते-कहते अपार करुणा के साथ संध्या भी चल दी। अभी नीचे मुख किए हुए नीले घोड़े का सवार वहीं खड़ा था।

———

प्रभाती

[शशि शेखर]

संकेत—यह कविता श्री शशि शेखर द्वारा रची गई है। इसमें उन्होंने सोए हुए भारत को जगाने का संदेश देकर नाश के खँडहरों पर नये निर्माण की नई इमारत खड़ी करने का संकेत दिया है।

भाव—संसार के अन्धकार की गोद में आलस से आँख मूँदे मेरे देश! संसार का कोमल प्रकाश बिखर रहा है, जागृति की नई किरण तेरे नेत्रों को छू-छू कर वापिस जा रही है। सवेरे का कोमल और लाल बादल भी तेरे लाल दुपट्टे को छू कर तुम्हें जगा रहा है। तुझे आज कवि की नई प्रभाती (सवेरा) भी जगाती है, इसलिए तू जाग। देख, कब से यह युग नया वस्त्र लेकर खड़ा है, मगर तेरे वे पुराने वेष (ड्रेस) आज तक क्यों नहीं बदले? संसार की आँखों में उमडता हुआ पानी तुम्हें बुला रहा है। आज मनुष्य की सिसकती हुई पीड़ा तुम्हें बुला रही है। अरे अमर स्वाधीनता के वीर पहरेदार! तू सो गया है? जब कि तुम्हें जंजीर चुनौती दे रही है, जब सहायहीन मनुष्यता तड़फड़ा रही है। नाग की भाँति फुँकार मारते हुए क्लेश उसे (मनुष्यता को) डसने दौड़ रहे हैं। मौत मनुष्य की हड्डियों को हँस-हँस कर चबा रही है और मनुष्य का खून पीने के लिये वह अपनी जीभ लप-लपा रही है। आज उसकी (मनुष्यता) साँस के प्रबल वायु से उमड़ कर कहीं शान्ति की लता उड़ न जाए, ले इसे बचा ले। सर्वनाश के पतझड़ में मनुष्यता की डाली सूख गई है। आज तेरे नए बसन्त के संदेश सुन कर यह (डाली) खिल उठे। अब तू नाश के इन खँडहरों पर एक नया निर्माण कर और इस मरी हुई मिट्टी में नये प्राण फूँक दे। हे सुन्दर भारत! संसार का जीवन ज़हर में घुट रहा है आज तू संस्कृति (Culture) के अमर घड़े से अमृत का दान कर। इस कार्य में तू विलम्ब न कर। देख, कहीं नये सृजन (निर्माण) का समय टल न जाये, इसलिये हे मेरे दया के ईश! बस अब तू जाग, जाग। संसार के अँधेरे की गोद में आलस्य से आँख मूँद कर पड़े हुए मेरे देश? अब तू जाग।

———

कवि-परिचय

तारा पाण्डे

श्रीमती तारा पाण्डे भावुक कवयित्री हैं। इनकी कविताओं में अनुभूतियों और अन्तर्द्वन्द्वों का वेदनापूर्ण चित्र बड़ी सुन्दरता के साथ निखर उठा है। सम्पन्न होने पर भी इन्हें शारीरिक अस्वस्थता तथा पारिवारिक उलझनों का सामना कुछ काल तक करना पड़ा था, जिससे इनकी रचनाओं में अन्तर्जलन की गहरी छाप पड़ गई। सरलता, ऊँची उड़ान तथा ललित पदावलि इनकी कविता की विशेषता है। निराला तथा पन्त जी की प्रेरणा पाकर आप इस क्षेत्र में उतरी थीं।

इनका जन्म अलमोड़ा में सन् १९१४ में हुआ था। आपकी प्रकाशित रचनाएँ निम्नलिखित—

१. सीकर। २. शुक-पिक। ३. अन्तरंगिनी।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

दिनकर जी हिन्दी के प्रौढ़ कवि तथा नवयुग की नूतन क्रान्ति के अमर गायक हैं। बाल्यकाल में ही इनकी प्रतिभा के उन्मेष प्रस्फुटित होने लगे थे। और विद्यार्थी-जीवन में ही 'वीर बाल,' 'प्राण भंग' इन दो काव्यों का प्रणयन कर डाला। बाद में 'रेणुका', 'हुँकार' इत्यादि रचनाओं ने हिन्दी जगत् में आप की ख्याति को चार चाँद लगा दिये।

कवि होने के साथ आप इतिहासविद् और आलोचक भी हैं। विद्रोह,

शुद्ध मानवता और राष्ट्रीयता के भाव दिनकर जी की रचनाओं में अधिक निखर उठे हैं। क्रान्ति युग का प्रतिनिधित्व करने वाली आपकी रचनाओं में राष्ट्रीय-गौरव तथा स्वाधीनता-संग्राम की परम्परा की झंकार मुखरित हो उठी है जो भारत के अतीत गौरव की आख्यारन सरिता के साथ त्रिवेणी का रूप धारण कर लेती है। इनके 'कुरुक्षेत्र' महाकाव्य पर भारतीय सरकार ने २०००) का पुरस्कार प्रदान किया है। "संस्कृति के चार अध्याय" आपकी नवीन पुस्तक ने हिन्दी क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त की है। आप 'राजभाषा आयोग' के सदस्य भी रहे हैं, और इस समय 'राज सभा' के सदस्य हैं।

आपका जन्म सं० १९६५ में समेरिया गाँव जिला मुंगेर (बिहार) में हुआ था। इनकी प्रधान रचनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. रेणुका, २. हुँकार, ३. रसवन्ती, ४. सामधेनी, ५. द्वन्द्व गीत, ६. कुरुक्षेत्र, ७. रश्मि रथि, ८. नील कुसुम, ९. नीम के पत्ते, १०. दिल्ली (कविता संग्रह) ११. मिट्टी की ओर, १२. अर्द्ध नारीश्वर (आलोचना) १३. संस्कृत के चार अध्याय।

———

मैथिली शरण गुप्त

गुप्त जी हिन्दी के सफल राष्ट्र कवि हैं। भारतेन्दु युग की समाप्ति और द्विवेदी युग के आरम्भ के सन्धि काल से चल कर आधुनिक काल तक निरन्तर साहित्य साधना करते चले आ रहे हैं। आपने साहित्य की विभिन्न दिशाओं को अपना कर विविध ग्रन्थ रत्नों को जन्म दिया है जो संख्या में लगभग सौ के करीब हैं। भारत की प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति पर रोचक रचानाएँ प्रस्तुत करते हुए आप देश-भक्ति, स्वतन्त्रता, गांधीवाद आदि नवीन प्रवृत्तियों को भी नहीं भूले। व्यक्ति-गत जीवन में आप सरल, सुसंस्कृत और अत्यधिक सज्जनता से ओत प्रोत हैं। देश भक्ति को [illegible] भावनात्मक रूप ही